- अध्याय द्वितीय -

' हिन्दी के झोपडपट्टी पर अधारित उपन्यासों में चित्रित जनजीवन का चित्रण '

गंदगीपूर्ण परिवेश।

विस्थापन

वेश्या-व्यवसाय

दारिद्रय

अवैध धन्धे

दाम्पत्य जीवन में तनाव

मानवता

उज्ज्वल भविष्य के सपने

गाली-गलौज की प्रवृत्ति

असाध्य बिमारियाँ

पुलिस आतंक

आपसी ईर्षा द्वेष

भविष्यत के प्रति चिंतन

नशापान

जातीय भेदाभेद

वेश्यागमन की प्रवृत्ति

मनोरंजन की विविध प्रणालियाँ

अवैध सम्बन्ध

दुर्दैव के शिकार लोक

स्नेहील प्रेमसंबंध

निष्कर्ष

- अध्याय द्वितीय -

'हिन्दी के झोपडपट्टी पर आधारित उपन्यासों में चित्रित जनजीवन का चित्रण'

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी का उपन्यास साहित्य तेजी से विकसित होता रहा। सन 1960 के पश्चात हिन्दी का उपन्यास साहित्य अधिकाधिक प्रौढतम रूप में प्रस्तुत होने लगा। इस काल में लेखकों की दृष्टि और वैचारिकता में परिवर्तन होने लगे। सन् 1960 के बाद उपन्यासकारों में विषय और अभिव्यक्ति की दृष्टि से सजगता और प्रयोगशीलता लक्षित होने लगी। सामान्य जनता की जीती-जागती ज्वलंत समस्याओं का और उसकी यथार्थ परिस्थितियों का चित्रण होने लगा। सामान्य जनता के जनजीवन की आशा-निराशा, हर्ष-खेद आदि को तलाशने का प्रयत्न होने लगा। समाजव्यवस्था की विषमता को नजर-अंदाज किया जाने लगा। जनसामान्य के जीवन में दिन-ब-दिन बढनेवाली जटिलताओं का चित्रण प्रस्तुत होने लगा। सन् 1960 के बाद प्रतिभावान प्रयोगवादी उपन्यासकार भारत की सामान्य जनता के जनजीवन का चित्रण करने के लिए छोटे-छोटे गाँवों, कस्बों, पहाडी अँचलों, सागर अँचलों, नदी अँचलों, महानगर के उच्चिष्ट पर पलनेवाले, झुग्गी-झोपडपट्टी अँचलों की ओर मुडता रहा। इसी के परिणामस्वरूप हिन्दी साहित्य के अँचलिक धारा में विविध रूपी मुख धारण किया। प्रगतिवादी उपन्यास लेखकों ने यथार्थवादी-अतियथार्थवादी उपन्यास साहित्य का सृजन करके सामान्य जनजीवन का चित्रण किया। झोपडपट्टी जनजीवन पर अधारित उपन्यास इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम लगता है।

हमने प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध में 'कबूतरखाना' - 1960, 'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई'- 1960, 'बोरीवली से बोरीबंदर तक' - 1969, 'मुरदाघर' - 1974, 'बसंती' - 1980 आदि उपन्यासों में चित्रित झोपडपट्टी जनजीवन को तलाशने का प्रयत्न किया है। आलोच्य उपन्यासों के उपन्यासकार शैलेश मटियानी, जगदम्बाप्रसाद दीक्षित और भीष्म साहनी प्रतिभावान, प्रयोगवादी उपन्यासकार के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं। उन्होंने अस्पर्शित, अनछुयी, अनगोडी गंदी झुग्गी-झोपडीनुमा बस्ती को अपने उपन्यासों का विषय बनाया और वहाँ के जनजीवन को वाणी देने का काम अत्यंतिक समर्थता के साथ किया। इन लेखकों ने झोपडपटिटयों का गंदा परिवेश, वहाँ की अभावग्रस्त रण्डियाँ, वहाँ के अवैध धन्धें, वहाँ के जनजीवन पर पुलिसों का आतंक, वहाँ के लोगों की अस्थिर जिन्दगी, उनके अनैतिक सम्बन्ध, उनमें स्थित नशापान की बुरी आदत, गाली-गलौज की प्रवृत्ति, आपसी संघर्ष, सट्टेबाजी, पाकिटमारी, तस्करी जैसी अपराधी प्रवृत्ति, उनके उज्ज्वल भविष्यत

12773

के नपुसंक सपने, उनका दारिद्रय, किस्मत को दोष देनेवाली उनकी प्रवृत्ति, पेट के लिए अपराध करने पर उन्हें तडीपार करने की घटना, उनमें स्थित अवैध मातृत्व आदि जनजीवन के विविध आयामों को तलाशने का प्रयत्न आलोच्य उपन्यासों में किया है। हम यहाँ आलोच्य उपन्यासों में झोपडपट्टी जनजीवन का चित्रण कितनी सफलता के साथ किया गया है इसपर सोचेंगे -

'कबूतरखाना' - 1960 शैलेश मटियानी :-

शैलेश मटियानी के 'कबूतरखाना' - 1960 में गणपत रामा के माध्यम से जिनके भाग्य में झुग्गी-झोपडी भी नसीब नहीं ऐसे फुटपाथ पर रहनेवाले लोगों का जनजीवन चित्रित किया है। लेखक ने इस चित्रण में अनुभूति और संवेदना से काम लिया है। गणपत रामा नामक एक 'रामा' की आत्मकथा को प्रतिनिधिक रूप निर्माण कर लेखक ने इन लोगों की स्थिति और गति पर प्रकाश डाला है। भूलेश्वर के आस-पास रहनेवाले इन लोगों की कथा-व्यथा यह परिवेश विषद करता है। इस उपन्यास में झुग्गी-झोपडपट्टी जनजीवन की केवल बुराईयाँ दिखायी है, अच्छाई कहीं पर भी नहीं। इस उपन्यास में वेश्याजीवन की कथा-व्यथा का चित्रण भी मिलता है। 'कबूतरखाना' के निर्मिती के पश्चात 'आजकल', 'आदर्श', 'विशाल भारत' आदि पत्र-पत्रिकाओं ने इस उपन्यास की प्रशंसा की और यह भी कहा है कि 'बम्बई जैसी महानगरी में पलनेवाले आवारा समाज का इतना [illegible] विश्वस्त चित्रण अब तक देखने को नहीं मिला है। एक पत्र ने तो लिखा है कि, 'महानगर की उच्छिष्ट पर पले हुए समाज का चित्रण' शैलेश मटियानी खिंचना चाहते है। यह चित्रण कटुता और अश्लिलता भरा लगता है। इस उपन्यास में मटियानी ने ईमानदारी के साथ बम्बई के रौरव नरक का आवरण उठाकर पाठकों के सम्मुख रख दिया है। इसमें अत्याचार, शोषण, अश्लिलता का यथार्थ चित्रण किया है। हम यहाँ इस उपन्यास में चित्रित जनजीवन पर प्रकाश डालेंगे -

बम्बई की इस नरकपुरी में रहनेवाले गणपत रामा, मंगूबाई, सईदन, कुलसुम आदि दारिद्रय से ओत-प्रोत दिखाई देते हैं, जो अपनी दरिद्रता को कम करने के लिए अवैध हरकतें करते हैं। गणपत रामा शराब की नशा में अपनी दरिद्रता का ब्यौरा पेश करता है और कहता है - 'आक्खा दिवस सेठानी लोग कूँ मस्का लगाता है, आक्खा दिवस कुतरा का माफिक पूँछ को '----' से लगाता है ----- पीछू जाकर साला पंधरा मिलता हे ---- साला अपन घाटी मराठी रामा लोग का भी कोई नौकरी है, कोई जिंदगी है?'[1]

इस दरिद्रता के कारण गणपत की बहन को देह-विक्रय करना पडा, उसे असाध्य रोग की बिमारी

जड गयी। दारिद्रय के कारण दवापानी के लिए पैसा नही मिला, और अंत में गंगूबाई की मृत्यु हुई। बहन की मृत्यु का दर्द गणपत रामा को बार-बार चूभता है। गणपत रामा इसपर प्रतिक्रिया व्यक्त करता हुआ कहता है - 'अपनी माँ बहनों की अस्मत की रखवाली उनसे नही हो पाती। भाई इतना मजबूर है कि वह बहन को वेश्या बनने से बचा नहीं पाता इसी तरह यहाँ मानवीयता के सारे नाते-रिश्ते अपवित्र, असम्बध्द होने के लिए मजबूर हो जाते हैं।'[2] यहाँ अतिनिर्धनता से उत्पन्न विविशता और मजबूरी पर प्रकाश डाला है। गणपत रामा की दरिद्रता को नजरअंदाज करते हुए लेखक कहते हैं - 'एक ओर पंचपुरा आवासों में कहीं-कहीं कुत्तों के लिए भी आवास कमरें हैं, दूसरी तरफ किचड की नालियों के अंदर मानवबस्ती है, फुटपाथों की क्या गणना।'[3] यहाँ लेखक इस दारिद्रय के पीछे पूँजीपतियों का और वर्गविषम्य का दावा करता है। लेखक ने बम्बई में स्थित इस भयंकर दरिद्रता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है - 'येच बम्बई में हट्टा-कट्टा गरीब लोग भीख माँगने को भीख ऊपर भी गुजर न होने पर। कच्ची-कच्ची उमर का छोकरी लोग पिल हाऊस, कामाठीपुरा, फरासरोड आबाद करती हैं। कच्ची-कच्ची उमर का छोकरा लोग दारू सप्लाई करने को ----।'[4] गणपत रामा के माध्यम से लेखक ने दरिद्रता और आर्थिक असमानता को दिखाने का प्रयत्न किया है। लेखक लिखते हैं - एक ओर इन गरीब लोगों को अपना शरीर ढकने के लिए कपडा भी मय्यसर नही होता। वस्त्रों के अभाव में किसी गरीब औरत का शरीर खुला रहेगा तो लोग उधर झाँक-झाँककर देखेंगे लेकिन पैसेवालों की बीबियाँ अपनी अधखुली नंगी टांगे तथा छाती पर इतने अधूरे कपडे पहनती है कि बस अपने हुस्न का जादू सिर्फ दुनिया को दिखाने के वास्ते। इसे हम फैशन कहते हैं और मेहनतकश गरीब लोग भूख में तडपते हैं। लेखक ने यहाँ भयंकर दरिद्रता तथा आर्थिक विषमता को प्रस्तुत किया है।

इस उपन्यास में लेखक ने गणपत रामा की बहन गंगा, कुलसूम और सईदन की वेश्याप्रवृत्ति पर प्रकाश डालते हुए यह स्पष्ट कर दिया है कि ये औरतें केवल दारिद्रय के अभिशाप को ढोते-ढोते देह-विक्रय करने को बाध्य होती है। गणपत रामा की बहन गंगा गणपत को हैजा होने पर वेश्यालय में अपना देह-विक्रय करके उसके दवा-पानी की व्यवस्था करती है। गणपत अपनी बहन से मिलने जब बम्बई आता है तब कमाठेपुरे के वेश्या-विश्व को देखकर लज्जित होता है। गणपत को देखते ही वह शर्मिंदा होकर खुदकुशी कर लेती है। कुलसूम और सईदन ऐसी ही दुर्दैव की शिकार नारियाँ हैं जो मजबूरी से अपने देह का विक्रय करती हैं। अंत में माँ और बहन के चले जाने के बाद दुःखी गणपत रामा भी वेश्यागमन करने लगता है।

प्रस्तुत उपन्यास में फुटपाथ पर जीवनयापन करनेवाले और झुग्गी-झोपडियों में निवास करनेवाले निम्न-स्तर के लोग नशापान के आदती कैसे होते हैं इसपर लेखक ने गहराई से प्रकाश

डाला है। इस उपन्यास का पात्र गणतप रामा घाटी मराठी है। वह शराबी है परंतु शराबी बनने का कारण प्रस्तुत करते हुए वह कहता है - 'हम दारू को, दारू हमारे गम को और गम हमारी जिंदगी को पीता है।'[5] लेखक ने यहाँ गणपत रामा के माध्यम से इन लोगों के नशापान के कारणों को तलाशने का प्रयत्न किया है। गणपत रामा शराब पीकर भारती व्यास की भी पोल खोलने का काम करता है। भारती व्यास जैसे भद्र लोग शराबपान करते हैं, फिर भी ऐसे लोगों के बारे में समाज दखल नहीं लेता है, परन्तु गणपत रामा जैसे लोग शराबपान करें तो उन्हें पुलिसों द्वारा पीटा जाता है, लॉकअप में बन्द किया जाता है। जो भारती व्यास अपनी शायरी में शराबियों की निर्भत्सना करता है, परंतु स्वयं शराब पीये बिना वह शायरी लिख नहीं सकता। लेखक ने यहाँ गणपत रामा के माध्यम से वर्गसंघर्ष की ओर इशारा किया है। भद्र समाज के लोगों को यहाँ गणपत रामा ने नंगा करने का प्रयत्न किया है। इस उपन्यास में लेखक ने केवल गणपत रामा को नशापान का आदती दिखाकर उसके जीवन की कथा-व्यथा को भुलने के लिए वह नशापान करता है, इसपर प्रकाश डाला है।

'कबूतरखाना' में इन लोगों की मनोरंजन करने की विविध प्रणालियों पर भी लेखक ने संकेत दिये है। मनोरंजन के लिए गणपत रामा इमारतीबाई के रेडिओ से गाना सुनता है। कभी-कभी शायर की शायरी भी सुनने चला जाता है। निम्नलिखित गाना गणपत रामा के लिए बहुत प्रिय लगता है ऐसा लक्षित होता है - '----- लेके पेहला पेहला प्यार भरके आँखों में खुमार - जादू नगरी से आया है कोई जादूगर।' गणपत रामा लावनी में दिलचस्पी रखता है। भारती व्यास की एक लावनी का उल्लेख करते हुए कहता है - 'ना भाये तेरा बँगला, ना भाये ये बिछौना - अभी तो सनम मेरा हुआ ही नहीं गौना।'[6] दिन-भर परिश्रम उठानेवाले गणपत रामा जैसे लोग रेडिओं के गाने और शायरों के शायरियों के माध्यम से कैसे मनोरंजन करते हैं, इसका यहाँ चित्रण मिलता है।

गणपत रामा पिक्चर देखने का भी शौक रखता है। वह रॉक्सी में लगा 'शमशीर' पिक्चर देखकर अपना मनोरंजन करने का प्रयत्न करता है।

'कबूतरखाना' में शैलेश मटियानी ने इस विश्व में स्थापित अवैध सम्बन्धों की ओर इशारा किया है। कभी-कभी अभावग्रस्तता को निपटाने के लिए तो कभी-कभी उच्छृंखलता के कारण तो कभी-कभी तीव्र भोगासक्ती के कारण अवैध सम्बन्ध स्थापित होते हैं। ये सम्बन्ध समाजमान्य नहीं होते हैं। लेखक ने यहाँ इन अवैध सम्बन्धों का सुक्ष्मता के साथ चिंतन किया है, ऐसा महसूस होता है। इस उपन्यास में कासम-चमेली के अवैध सम्बन्ध देखने को मिलते हैं।

कासमभाई का दिल तोडकर चमेली अन्य किसी के साथ गोलपीठा जाकर अवैध सम्बन्ध रखती है। चमेली के इस अवैध सम्बन्धों की ओर इशारा करते हुए कासमभाई कहता है - 'जालिम जान देती थी यार मेरे ऊपर, पर बीच-बजार में बनारसी जूता मारकर चली गयी। गणपत को कासम-चमेली के इस अवैध प्रसंग से खीज उत्पन्न हो जाती है और वह सभी औरत जात को गालियाँ देता है।

गणपत रामा जैसे फुटपाथ के निवासी बडे-बडे सेठों के घर रामा का काम करने लगते हैं, तब वहाँ की सेठानियों के साथ उनके अवैध सम्बन्ध स्थापित होते हैं। गणपत रामा और सेठानी के सम्बन्ध इसका अच्छा सबूत है। गणपत का दोस्त पटवर्धन की सेठानियों के साथ गणपत के अवैध संबंध दिखायी देते हैं। इन सम्बन्धों को सुरक्षित रखने के लिए अपने पति को जलाना चाहती है। वैसे ही सखाराम और सेठानी आनंदीबाई के भी अवैध संबंध है। सखाराम गणपत जैसा ही एक व्यक्ति है। आनंदीबाई के साथ उसके संबंधों को बढते हुए देखते ही उसे कार को दीवार से टकराकर मार देता है। इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए गणपत रामा कहता है - 'वोच हमारे जिगरी दोस्त सखाराम की जिंदगी को वरली का गटर में पहुँचाएला।'[7] गणपत जैसे रामा का काम करनेवाला दत्तूभाऊ शारदाबेन से जुडकर एक जवेरी बन गया। दत्तूभाऊ और शारदाबेन के अवैध सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए गणपत रामा कहता है - 'उधर पटेल सेठ लच्छमी दातूनवाली कूँ लेकूँ 'तीन बत्ती चार रास्ता' देखने कूँ गयेले, इधर बैठक का तीन बत्ती बुझाकूँ, अंदर का चार खिडकी बंद करकू हमेरा दत्तू भाऊ शारदा सेठानी के रूम में घूस गयेला।'[8] इस प्रकार दत्तूरामा शारदासेठानी की कृपा से जवेरी बन गया।

गणपत - यशोदाबेन के अवैध सम्बन्धों पर भी लेखक ने यहाँ इशारा किया है। सेठ लालजी की बहु निलांबरी अपने पति के प्यार से उपेक्षित रहकर रामा लोगों के साथ जुड जाती है। लालजी इन सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए कहता है - 'तेरे लिए मैंने होटल में रामा लोग रखे हैं।'[9] स्पष्ट है कि इस उपन्यास में लेखक ने सेठानियों के साथ फुटपाथ के निवासी रामा लोग कैसे अवैध सम्बन्ध रखते हैं और कई रामा लोग सेठानियों की महेरबानी से धन्ना सेठ कैसे बनते हैं, इसपर चिंतन किया है। गणपत रामा के कुलसुम और सईदन के साथ भी अवैध संबंध हैं, इसपर भी यहाँ प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने इन लोगों में असाध्य बिमारियाँ कैसे बढ जाती है और इन्हीं बिमारियों से इन लोगों की मौत भी कैसी होती है इसपर भी दृष्टिक्षेप किया है। गणपत रामा असाध्य रोग से जर्जर है, उसकी बहन गंगा भी असाध्य बिमारी से मौत के शिकंजे में अटक गयी थी। उसे गरमी और परमा की बिमारी हो चुकी थी परंतु अभावग्रस्तता के कारण कोई दवापानी वह नहीं कर सकी। इसपर प्रकाश डालती हुई कृष्णाबाई कहती है - 'गंगा गरमी की बिमारी से जर्जर

थी। एक महिने से इस बिमारी से तडप रही है।'[10] सईदन भी असाध्य रोग से पीडित होकर स्वर्गवासी हुई। लेखक कहते है - 'आखिर को बिमारी ने सड के खुदा को प्यारी हो गयी।'[11]

फुटपाथ की जिंदगी यापन करनेवाले लोग उदरपूर्ति के लिए छोटे-मोटे अवैध धन्धें करते हैं। गणपत रामा, सखाराम, दत्तूभाऊ आदि रामा बनकर सेठों के घरों में चौका-बर्तन करने का काम करते हैं। गंगा, कुलसुम, सईदन देह-विक्रय का व्यवसाय करती है। गणपत रामा कई दिनों तक चप्पी-मालिश का व्यवसाय करते-करते इस अच्छे-बूरे माहौल से परिचित होता है। गणपतरामा 'कभी-कभी रागु दादा की कंपनी में भर्ती होकर सांताक्रुझ-कुर्ला-अंधेरी-कालिना से दारू की बोतलें लाकर शहर में बेचने का काम करता है।'[12]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने इन लोगों में स्थित मानवता की प्रवृत्ति की ओर भी संकेत किया है। गणपत की बहन गंगा द्वारा अपना देह-विक्रय करके अपने भाई और परिवार के लिए पैसे जुटाना, सईदन द्वारा गणपत की बिमार अवस्था में सहायता करना, गणपत द्वारा पनवपुल की गानेवाली वेश्या को खुद के पैसे देकर उसे अपनी बिमारी का इलाज करने को कहना, नाचनेवाली द्वारा अपने परिवार के लिए देह-विक्रय करना, गणपत द्वारा कमला को भी पैसे देकर और इलाज करवाकर गाँव भेज देना आदि कई मानवतावाद के उदाहरण इन लोगों में देखने को मिलते हैं।

अभावग्रस्तता में भी दूसरों की सहायता करने के लिए इन लोगों की छटपटाहट मानवतावाद का ऊँचा उदाहरण लगता है। गणपत की मानवता पर प्रकाश डालते हुए कमला कहती है - 'भैया तुम्हारे उपकार जीवन-भर न भुलूँगी।'[13]

इस उपन्यास में लेखक ने इन लोगों पर होनेवाला पुलिस अत्याचार गायकवाड हवालदार के माध्यम से प्रस्तुत किया है। गणपत के माध्यम से इन लोगों में स्थित बेकारी और बेगारी पर प्रकाश डाला है। इन लोगों की दयनीयता, कामासक्त जीवनप्रणाली, यहाँ के लोफरों की दुनियाँ, आपसी मार-काट या झगडे आदि का भी चित्रण किया है। रागुदादा जैसे गुण्डों की दुनिया पर भी यहाँ प्रकाश डाला है। गणपत के माध्यम से भविष्यत के उज्जवल सपने देखनेवाले इस बस्ती के लोगों पर प्रकाश डाला है। इन लोगों की गाली-गलौज की प्रवृत्ति पर, सरकारी सुविधा अभाव पर, कानून के अभाव पर भी लेखक ने यहाँ प्रकाश डालकर फुटपाथ पर जीवनयापन करनेवाले लोगों के जनजीवन पर यथार्थता के साथ प्रकाश डाला है।

निष्कर्ष :-

शैलेश मटियानी ने प्रस्तुत उपन्यास में सातारावाला गणपत रामा के माध्यम से फुटपाथ पर जीवन यापन करनेवाले लोगों के जनजीवन पर प्रकाश डालने का काम किया है। इन लोगों की दुर्गति को, गणपत रामा की व्यथा के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में इन लोगों के

यथार्थ जिंदगी का चित्रण किया है। इन लोगों में स्थित दारिद्रय, वेश्यागमन की प्रवृत्ति, मनोरंजन के विविध आयाम, उनमें स्थित मानवतावाद, उनपर होनेवाला पुलिस अत्याचार, उनमें स्थित भोगासक्ती, इन लोगों की आवारा गर्दी, इन लोगों के अवैध धन्धें, आपसी ईर्षा-द्वेष आदि का यथार्थरूप में चित्रण 'कबूतरखाना' में किया गया है। इस उपन्यास की भाषा मराठी मिश्रित बम्बइय्या बोली होने के नाते उपन्यास का वातावरण जिंदा बन बैठा है। आत्मकथनात्मक शैली में लिखा हुआ यह उपन्यास बम्बई के फुटपाथ पर जीवनयापन करनेवाले महानगरीय परिवेश का एक जिंदा दस्तावेज प्रस्तुत करता है।

"किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई" - 1960 शैलेश मटियानी :-

शैलेश मटियानी के "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई" 1960 में कोठे पर जीनेवाली नारियों की बेबसी का चित्रण किया है। इस उपन्यास में बम्बई जैसी धन-सम्पन्न महानगरी के पास के उपेक्षित इलाके का चित्रण किया है। यहाँ न आधुनिकता है, न बम्बई के भीड-भाड से उत्पन्न शोर-शराबें हैं। इन बस्तियों में बसे हुए लोगों की एक ही तरह की संस्कृति है, भाषाव्यवहार है, रहन-सहन है तथा वेश-भूषा सब एक तरह की है। ऐसे उपेक्षित अंचल का चित्रण मटियानी ने बारीकी के साथ किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में शैलेश मटियानी ने दरिद्रता का ऐसा चित्रण किया है कि बाप बेटी बेचने को मजबूर होता है। यहाँ चित्रित नारियाँ रोजी-रोटी को प्राप्त करने के लिए वेश्या-व्यवसाय करती हैं। इस दरिद्रता में अपनी ही बहन या बेटी का शोषण करके समाज या परिवार पेट पालने का काम करता है। शैलेश मटियानी ने इस उपन्यास में बेकारीजन्य निराशा दीनता और विवशता का चित्रण किया है। देहातों से उदरपूर्ति के लिए महानगरों की तरफ दौडनेवाले गरीब, बेकार युवकों की अवस्था का भी लेखक ने चित्रण किया है। दारिद्रय के अभिशाप को पाटने के लिए लोग कैसे-कैसे अनैतिक कार्य में जुड जाते हैं इसपर भी लेखक ने चिंतन किया है।

इस उपन्यास में लेखक ने विधवा गंगूबाई जैसी अभागन स्त्रियों का चित्रण किया है। यहाँ वैधव्य की चादर को सुरक्षित रखनेवाली स्त्रियाँ भी हैं। इसपर भी लेखक ने प्रकाश डाला है। इस बस्ती में लेखक ने फुटपाथ का जीवन-यापन करनेवाले लोगों की परेशानियों को प्रस्तुत करके यह विषद किया है कि इन लोगों की जिन्दगी कितनी अस्थायी होती है।

फटपाथ पर अपना जीवन बसानेवाले इन लोगों को पुलिस आतंक का डर सदा लगा रहता है। इनमें से कई पुलिस की लाठियाँ सहते-सहते मर जाते हैं। यहाँ इन लोगों पर हावी होनेवाला पुलिस आतंक स्पष्ट रूप से लक्षित होता है।

प्रस्तुत उपन्यास में मानवीय संवेदनाओं के दर्शन भी होते हैं। इस उपन्यास में अवैध सम्बन्ध, उच्छृंखलता, निम्न वर्ग के फुटपाथी जिंदगी का वर्णन हमें देखने को मिलता है। इस परिवेश में मूल्य-विघटन, नारी-शोषण आदि के भी चित्रण मिलते हैं।

'कबूतरखाना' में जिस प्रकार इन लोगों के जनजीवन का चित्रण मिलता है उसी प्रकार ही 'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई' में भी मिलता है। इसलिए पुनरावृत्ति दोष को टालने के लिए इस उपन्यास में चित्रित फुटपाथी जनजीवन का विस्तृत चित्रांकन प्रस्तुत नहीं किया है।

निष्कर्ष :-

प्रस्तुत उपन्यास में फुटपाथ पर सोनेवाले बेसहारा लोगों की जिंदगी, उनकी परेशानियाँ, वहाँ जीवनयापन करनेवाली नारियों की बेबसी, उनका दारिद्रय, आर्थिक विषमता, वर्गसंघर्ष की प्रवृत्ति आदि का चित्रण लेखक ने अनुभूति और संवेदना के साथ किया है। इसके साथ-ही-साथ लेखक ने सेठानियों की कामतृप्ति के लिए रामदुलारे जैसे निम्नवर्ग के व्यक्ति को सेठानियों के पतिद्वारा ही तैनात करने की एक प्रवृत्ति की ओर भी इशारा किया है। प्रसव पीडा से पीडित अभावग्रस्त रमी को रहीमा पठान की बगल में सोना पडा। इस घटना के माध्यम से लेखक ने इस भयंकर अभिशप्त घिनौने और गंदे माहौल पर व्यंग्य किया है। शैलेश मटियानी ने प्रस्तुत उपन्यास में महानगरीय अभावग्रस्त जनजीवन की पीडा तथा व्यथा को वाणी देने का प्रयत्न किया है। इस उपन्यास में बम्बई नगरी की इस गंदी बस्ती का यथार्थ चित्रण किया है और महानगरीय जीवन की अंचलविशेषता को समर्थता के साथ प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में अभावग्रस्त, अशिक्षित जीवन की कहानी को कठोर यथार्थता के साथ पाठकों के सामने रखकर लेखक ने एक प्रशंसनीय काम किया है और यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि आर्थिक अभाव के कारण इस प्रकार की घिनौनी जिंदगी व्यतीत करने के लिए ये पात्र विवश हैं और आर्थिक वैषम्य के कारण इस समाज में वर्गसंघर्ष पलने लगा है। लेखक की इस रचना में साम्यवाद के दर्शन होते हैं, मानवतावाद के दर्शन होते हैं। इस उपन्यास के पात्र किसी भी वाद के प्रचारक नहीं लगते हैं। उनके जीवन की कठिनाइयाँ ही उनके सामने सबसे बडा प्रश्नचिन्ह हैं।

'बोरीवली से बोरीबन्दर तक' - 1969 : शैलेश मटियानी :-

शैलेश मटियानी के 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक' - 1969 में 'मुंगरापाडा' झोपडपट्टी जनजीवन की दरिद्रता, भविष्य के प्रति इन लोगों की उदासी, वेश्या-वृत्ति, उनके स्नेहील सम्बन्ध, उनमें स्थित उज्ज्वल भविष्य के सपने, घर-बार छुटने का तथा घर-बार से बिछुडने का दर्द, पुलिस अत्याचार, मानवीयता, अवैध धन्धें, उनमें स्थित बेकारी, चोरी, गुण्डई, नशापान, ठगाई गयी

औरतें, इन लोगों में स्थित आश्चित्य, सत्कार, मारकाट, अवैध सम्बन्ध, गुनहगारी, आपसी संघर्ष आदि विविध झाँकियाँ यहाँ देखने को मिलती हैं।

हम यहाँ शैलेश मटियानी ने झोपडपट्टी जनजीवन की इन झलकियों पर कहाँ तक सफलता के साथ सोचा है इस पर विचार करेंगे -

शैलेश मटियानी के 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक' में झोपडपट्टी में स्थित भयावह दारिद्रय पर लेखक ने अनुभूति और संवेदना के साथ-साथ सोचा है। अल्मोडा से आये हुए बेकार युवक वीरेन्द्र और पंडित अपनी किस्मत की तलाश में बम्बई महानगरी में प्रस्तुत होते हैं। पैसे की कमी होने के कारण बिना टिकट मुसाफिरी करते हैं। इस पर प्रकाश डालता हुआ वीरेन कहता है - 'लगता है अब टिकट चेकर आया ---- मुझे भी फाँसी लगायेगा।'[14] वीरेन और पंडित बेकार होने के नाते इतने दरिद्री बन चुके हैं कि रेल-यात्रा के लिए उनके पास पैसे भी नहीं। इन दोनों के भयावह दारिद्रय पर और अर्थाभाव पर लेखक ने अपनी अनुभूति और संवेदना के साथ प्रकाश डाला है। अपनी भाई-बहन, माता-पिता आदि से बिछुडने का दर्द उन्हें होता है। वीरेन टिकट-चेकर के आने के भय से भयभीत होता है, अपने अंतस के अनेक परेशानियों से थकान महसूस करता है। दादर स्टेशन पर वह टिकट के अभाव में टिकट-चेकर के कचोट में फँस जाता है। चेकर साहब को हवलदार कहता है - 'विदाऊट मदि धरला काय मास्तर? घेऊन जाऊ काय लाकप मदि? (बिना टिकट यात्रा करते पकडा क्या, मास्तर? लेके जाऊ हवालात में?)'[15] यहाँ अभावग्रस्त वीरेन की स्थिति और गति पर लेखक ने गहराई से सोचा है। वीरेन को अपनी दरिद्रता पर लानत आती है। होटल में काम करनेवाला वेटर रामस्वामी जब उसे 'साहब' कहकर पुकारता है तब वीरेन को अपनी दरिद्रता पर और अभावग्रस्तता पर खीज आती है। वह कहता है - 'दोस्त तुम मुझे साहिब कहते हो, मैं साहिब दिखता हूँ तुम्हें? यह फटी पायजामा, यह गाढे का कुर्ता ----।'[16] वीरेन की भयावह दरिद्रता यहाँ लक्षित होती है। वीरेन के मतानुसार दरिद्री व्यक्ति पुरूषार्थ नहीं दिखा सकता ताकि पुरूषार्थ का क्षेत्र ही उसके लिए खुला नहीं रहता। असाहय हालत में दरिद्री बेकार युवक अत्यंतिक निराश होकर आत्महत्या की बाते भी सोचता है। वह कहता है - 'तो क्या इन खामोश खडी बिल्डिंगों, इन न टूटनेवाले बडे-बडे घरौंदों से सिर टकरा-टकराकर मर जाय?'[17]

आगे चलकर लेखक ने दो झगडनेवाले मजदूरों के आर्थिक स्थिति का परिचय दिया है। ये मजदूर अपने मालिक के पास पैसों की माँग करते हुए इनमें से एक कहता है - 'ठेकेदार साब, इसको उतनी जरूरत नहीं पैसों की जितनी मुझे। लालू को बुखार है तो वैद्य, डॉक्टर कहाँ से लाऊँ?

और साब घरवाली की गोद में दूसरा नमुना आने ही वाला है, उसके लिए कुछ बन्दोबस्त करना ही पड़ेगा। चावल-आटा उधार देने से इन्कार करनेवाले सॉवलराम करसनदास को उद्देश्यकर दूसरा मजदूर कहता है - 'साहब मेरे गले में फाँसी लगी हुई है, हेतू कि माँ गारा ढोते-ढोते गिर पडी, अस्पताल में पडी है, बेटा जम्सू दादा के छोकरे के साथ दारू ले जाते वक्त पकडा गया, काली चौकी के लॉकप में पडा है, उसकी जमानत का बन्दोबस्त करना है, साहब आज पैसे मुझे ही दीजिए।'[18] इन दो घटनाओं से झुग्गी-झोपडी में फैले हुए भयंकर दारिद्रय का पता चलता है। इस प्रकार यहाँ लेखक ने बेकार लोगों की दरिद्रता को और मजदूरों की दरिद्रता को सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने मुँगरापाडा की वेश्या-व्यवसाय प्रवृत्ति पर भी गहराई से सोचा है। लेखक ने इस व्यवसाय की मजबूरी, फँसायी गयी औरतों का इस व्यवसाय में प्रवेश आदि के माध्यम से इस पर चिंतन किया है। लेखक ने नूर (रेवा), शारदाकाकी, चंदा (चंदानी), लाली, पिचन्ना, नागम्मा आदि ऐसी अभागन नारियाँ चित्रित की हैं जिनमें से कई उदरपूर्ति के लिए तो कोई ठगाई जाने के कारण इस व्यवसाय में जुडी है। पंडित ऐसी ही एक स्त्री लाली के बारे में कहता है - 'मुझे एक लाली नामक औरत मिली थी, वह कहती थी - मलाई रंडी को जीवन नीको, लागन्याई नै को निमी उध्दार करऊ - चरण की दासी भाइने रूँला। (मुझे वेश्या का जीवन बिताना अच्छा नही लगता, आप यहाँ से मेरा उध्दार करें तो मैं आपके चरणों की दासी बनकर रहूँगी।')[19] लाली को किसी चूडी-बेंदीवाले कलाल ने काठमाण्डू से भगाकर लाया था। उसे तीन सौ रूपये की जरूरती थी, पंडित ने उसे दो सौ रूपये दिये थे तो बैरन किसी मुसलटे के साथ सहारनपुर भाग गई। चंदा भी लाली जैसी ही एक अभागन औरत है जिसे लिला चिटणीस बनाने के सब्ज बाग दिखाकर कलियाहुसैन उसे बम्बई ले आया। चंदा को फिल्मसृष्टि का अधिक आकर्षण था। वह कलिया तबलची से प्यार भी करती थी। वह कलिया चंदा से कहता है - 'जब तुम हिरोईन बन जाओगी तब मैं डाइरेक्टर, प्रोडयूसर बन जाऊँगा।'[20] इससे चंदा अत्यानंदित हो जाती है परंतु कलिया ने चंदा को बम्बई लाकर नासरी होटल में तंदूरी रोटियाँ सेंकनेवाले गबरू चाचा के यहाँ रखा। गबरू चाचा बेंतवाली चाल में रहता था। वह दिनभर चंदा को मलाई और गुलाबजामुन खिलाता था। आगे चलकर कलियाने चंदा को अपनी बीबी कबुल किया परंतु उसे बीबी के तरह नही रख सका। उसने पहली सुहाग-रात फुटपाथ पर मनाई परंतु पुलिसों ने उसे वहाँ खदेड दिया। फरास रोड के सखाराम दत्तात्रय केशव भिकाजी हिन्दू होटल में ऊसल-पाव खानेवाली वेश्याओं की नायकन शारदाकाकी को कलियाहुसैन चंदा के साथ दिखाई देता है और शारदा काकी अपने जाल में चंदा को फँसाती है और कहती है - 'किसी नबाब की मनचली, कमसीन बेगम तो नही उडा

लाया बाँवला?'[21] और चंदा को अलीबक्श की साथ करनी पडी तत्पश्चात कलियाहुसैन और चंदा दोनों अपने मुँगरापाडावाले झोपडे में आये। यहाँ लेखक ने चंदा की बेबसी, उसकी दुःखद स्थिति का चित्रण करते हुए कहा है - 'वह चंदा थी, धरति आकाश दोनों रोशन करती रही, वह बेबस थी आसू पीकर खून बरसाती रही वह नारी थी, दुःख झेलती, सितम सहती रही ---- इसके बाद चंदा को प्रोडयूसर डाइरेक्टर घोषबाबू को सप्लाई कर दी। चंदा हिरोईन चंदानी बन गयी।'[22] यहाँ मैथिलीशरण गुप्त की निम्नलिखित पंक्तियाँ याद आये बगैर नहीं रहती।

'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में दूध और आँखों में पानी।'

यहाँ लेखक ने चंदा के जीवन के विविध आपदाओं के साथ-साथ नारी-जीवन के विदारक यथार्थ को चित्रित किया है।

प्रस्तुत उपन्यास के अन्नास्वामी ने अपनी बहन नागम्मा और पिचन्ना को अपनी जेब भरने के लिए और नशापान की पूर्ति के लिए वेश्या-व्यवसाय में दाखिल किया था।

यहाँ फँसायी गयी रेवा नूर के रूप में इस व्यवसाय को उजागर करती है, परंतु सौभाग्य से एक गुण्डा दादा उसका उध्दार करके उसे अपनी झोपडपट्टी में ले आता है।

इस उपन्यास का स्वामी फारस रोड की तरफ मुडता है और सोचता है कि - 'आज माल-पानी जास्ती है, तो किसी नयी चिडियाँ को क्यों न चुगाये?'[33] यहाँ अन्नास्वामी की भोगासक्ती दिखाई है। अन्नास्वामी भागूबाई जैसी अनेक वेश्याओं से भी सम्बन्ध रखता है। भागूबाई अमरावती से आकर बम्बई की इस रौरव में सम्मिलीत हुई थी और अनेक-सी युवतियों की सहायता से इस व्यवसाय को बढा रही थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि लेखकने अत्यंतिक बारिकी से झुग्गी-बस्ती में चलनेवाले वेश्या-व्यवसाय की ओर इशारा किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने अवैध धन्धों का चित्रण भी किया है। ये लोग अभावग्रस्तता के कारण या दरिद्रता के कारण अवैध धन्धों की ओर आकर्षित होते हैं। वेश्या-व्यवसाय इसी की ही एक उपज लगता है। रोजी-रोटी के लिए झुग्गी-झोपडियों के निवासी छोटे-छोटे बच्चे कच्ची शराब वहन करने का काम करते हैं, चोरियाँ करते हैं, गुण्डई करते हैं, लूटपाट करते हैं। इस बस्ती का दादा जेब काटने का काम करता है। वह दूध बेचनेवाले भैय्या के अपने मुँह में रखे हुए पैसों पर हाथ मारता है। ये दादा लोग इस बस्ती पर हमेशा अपना आतंक जमाते है। युसुफ दादा इसका अच्छा उदाहरण है। दूध बेचनेवाले भैय्या के मुँह से युसुफ दादा द्वारा पैसे निकाले जाते है, यह दृश्य वीरेन देखता है। वीरेन को धाक दिखाते हुए दादा कहता है - 'खुदा कसम, जरा भी पसरेगा तो ईद का बकरा बना डालूँगा।'[24] इस प्रकार इस बस्ती के सामान्य

व्यक्ति इन गुण्डों द्वारा की हुई लूट के शिकार बनते हैं। इस उपन्यास में शराब सप्लाई करने का, फिल्मों के लिए 'एस्ट्रा' छोकरे और छोकरियाँ सप्लाई करने के काले धन्धें भी किये जाते हैं। विठ्ठल द्वारा शराब सप्लाई का तो अन्नास्वामी द्वारा वेश्याओं को छोकरियाँ सप्लाई करने का व्यवसाय किया जाता है। ये लोग मार-काट और कत्ल जैसे अवैध काम भी करते हैं। दादा वीरेन से अपनी कहानी बताते हुए कहता है - 'इसी मुँगरापाडा में मुझे नौ बरस हुए ---- मैंने यहाँ दो मद्रासी दादाओं को चीर डाला था ----- तब से मेरा रौब गालिब है। पर पिछले दो बरस से धन्धा-पानी सब चौपट है।'[25] युसुफ दादा इस झुग्गी-झोपडियों में चलनेवाले अवैध धन्धों पर प्रकाश डालते हुए कहता है - 'मेरे हाथ-नीचे छोकरे आज गुलछर्रे उडा रहे हैं, यह अलीबख्श एक रूपया बाटली की हिसाब से मेरी दारू सप्लाई करता था और कलिहुसैन की क्या कहूँ? ---- सब काम किये यार पर ये औरत बेचने, फँसाने का धन्धा मैंने कभी नहीं किया।'[26] स्पष्ट है कि कलियाहुसैन और अलिबख्श के अवैध धन्धों की ओर इशारा किया है। दारू का अवैध धन्धा करनेवाले दादा को अंत में पुलिस पकड के सांताक्रुझ की चौकी में बन्द कर देती है। ये लोग खुन करते हैं, दारू बेचते हैं, तडीपार हो जाते हैं। लेखक ने यहाँ अलिबख्श, कलियाहुसैन, दादा, विठ्ठल, अन्नास्वामी, भागूबाई, शारदाकाकी आदि पात्रों के माध्यम से झुग्गी-बस्ती में चलनेवाले अवैध व्यवसायों की ओर सोचा है।

अभावग्रस्त जीवनयापन करनेवाले झुग्गी-बस्ती के इन लोगों में अवैध संबंध भी प्रस्थापित किये जाते हैं इस पर भी लेखक ने यहाँ चिंतन किया है। अलिबख्श के चंदा के साथ अवैध सम्बन्ध है। नूर और वीरेन के अवैध सम्बन्ध भी यहाँ देखने को मिलते हैं परंतु बाद में वीरेन नूर से विवाह करके नूर का उध्दार कर अपने साथ ले जाता हैं।

इस उपन्यास में नशापान की प्रवृत्ति भी देखने को मिलती है। अन्नास्वामी, विठ्ठल इसके अच्छे उदाहरण हैं इस उपन्यास में गंदे परिवेश का चित्रण भी हुआ है। मुँगरापाडा की बीस-पचीस झोपडों की बस्ती, वहाँ के भीख-मंगे, जवानी को सिजदा करनेवाली औरतें और फुटपाथी गंदे परिवेश का चित्रण यहाँ देखने को मिलता है। इस उपन्यास में इन लोगों में स्थित उज्ज्वल भविष्य के सपने भी देखने को मिलते हैं। वीरेन्द्र के उज्ज्वल भविष्य के सपने इसका अच्छा उदाहरण है। लखनौ से लायी गयी, इस बस्ती में बसी हुई चंदा फिल्मी अभिनेत्री के सपने देखती है।

इन झुग्गी-झोपडियों में बसे लोगों पर पुलिस आतंक हमेशा के लिए छाया रहता है। पुलिस के आतंक से फुटपाथों पर बसे हुए लोग दौड-धुप करते हैं, पुलिसवाले उनकी डंडें से पीटाई करते हैं। वीरेन को भी पुलिस आतंक का शिकार होना पडता है। जगह के अभाव के कारण

सिकंदराबाद से आया कुंदस्वामी भी फुटपाथ पर विश्राम करते हुए पुलिसों की पकड में आता है। वह भिड-भिडाते हुए पुलिसों से कहता है - 'हवलदार हमरे को छोड दो हम अभी सिकंदराबाद से आया हमारा नाम कुंदस्वामी। हम चोर मवाली नहीं साहिबा, हमकू छोड दो साहिबा।'[27] पुलिस आतंक के इस दृश्य को वीरेन देखता है। फुटपाथ पर सुहाग-रात मनानेवाले कलिहुसैन को भी पुलिस आतंक का शिकार होना पडता है। पुलिस हवलदार कहता है - 'साला फुटपाथी पर मैं को ले आया, साला कहीं से भगा के, उडा के लाया है, क्या कल भी ले आना इधर ही ---- अब तेरे को कोई रोकेगा-टोकेगा नहीं, समझा क्या ----।'[28] पुलिस की इस व्यंग्योक्तियों ने कलिया को घायल बना दिया था। इस उपन्यास में फुटपाथ पर और झोपडपट्टी में जीवनयापन करनेवाले तथा अभावग्रस्त जिंदगी गुजरनेवाले इन लोगों पर पुलिस आतंक हमेशा छाया रहता है।

प्रस्तुत उपन्यास में अभावग्रस्त जीवन जीनेवाली, अवैध धन्धें करनेवाले एक दूसरे से कठोरतापूर्ण बर्ताव करनेवाले लोग भी साक्षात मानवता के पुतले कैसे लगते हैं इसका परिचय मिलता है। यहाँ गुण्डा युसुफ दादा की मानवता बखानने योग्य लगती है। एक बेकार युवक वीरेन की मासूमियत पर गुण्डा दादा तरस खाते हैं और कहते हैं - 'चलो, तुमको नूर के हाथ की चाय पिलाऊँगा ---- तुम परदेसी लगते हो।'[29] यहाँ एक अजनबी परदेशी से भी दादा कितना मानवतापूर्ण बर्ताव करता है इसका पता चलता है। दादा मानवतावादी होने के नाते झुग्गी-झोपडी के लोग भी उसकी इज्जत करते हैं। कोई दादा को चाय पिलाता हैं तो कोई दादा को हुक्का पीने के लिए बुलाता है। युसुफ दादा नूर को वेश्या-व्यवसाय से हटाकर अपनी झोपडी में ले आता है। नूर के प्रति दादा की आस्था प्रशंसनीय लगती है। लेखक का कथन है - 'दादा लाख बुरा था, बदनाम था, दुनिया के लिए मनहूस था, पर नूर के लिए तो घनी शीतल छाया था।'[30] दादा अतिथ्य सत्कार में और पुण्य-कर्म में आस्था रखता है। वह वीरेन को अपने ही झोपडे में रहने को बाध्य करता है। वह नूर से कहता है - 'ये ठाकूर साहब यही रहेंगे ---- जिंदगी में न जाने कितनों को गुमराह किया होगा? सोचता हूँ कुछ भलमनसाहत भी इन हाथों से हो जाय।'[31] दादा के इन विचारों में मानवतावाद के स्त्रोत बहते हैं। परिस्थिती के साथ-साथ गुण्डा दादा में परिवर्तन लक्षित होता है। दादा अपनी स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहता है - 'पहले जैसा बदमाश अब मैं नहीं रहा। पैसे क्या खतम हुए, कुछ बुराइयाँ भी खतम हुई। यह जेब काटने का धन्धा तो मैं छोड ही चुका था पर इधर जरा कडकी में हूँ, तू मुझे गलत न समझना। यों यहाँ सीधे रहो तो कोई जीने न दे - सव्वासेर बनकर रहने से कोई हाथ नहीं लगाता।'[32] महानगरीय जीवन की असलियत दादा के इस कथन से स्पष्ट होती है। नूर के कारण दादा में आये हुए परिवर्तन भी लक्षित होते हैं। दादा गुण्डा होने के बाद भी उसके मन में प्यार, अतिथ्य संस्कार की भावना है।

बेसहारा को सहारा देने की उसकी प्रवृत्ति में मानवता के दर्शन होते हैं। दादा की इस इन्सानियत के बारे में कृतार्थता व्यक्त करते हुए वीरेन कहता है - 'मैं तो आपका एहसान मंद हूँ दादा। मुझे ऐसे बुरे समय में आप सहारा दे रहे हैं।'[33] जिस प्रकार दादा की मानवता के प्रति वीरेन कृतज्ञता व्यक्त करता है उसी प्रकार नूर भी दादा के प्रति अतीव श्रध्दा दिखाती है। नूर के दादा की जिंदगी में आनेपर दादा की गुनहगारी वृत्ति का अंत हो गया। वह अब भी कच्ची शराब बेचता था, पाकिटमारी करता था, परंतु कभी-कभी मजबूरी वश। यह इसलिए करता था कि इसके सिवाय उसके आगे और कोई साधन-स्त्रोत न था। नूर की और खुद की उदरपूर्ति के लिए वह यह काम करता था। 'दादा बदमाश था, जुआरी था, शराबी था, चोर था --- पर उसके पहलू में जो दिल था वह बदमाश का होते हुए भी शरीफ, चोर का होते हुए भी ईमानदार और खूँखार होते हुए भी कोमल था। दादा इन्सान पहले था हैवान बाद में।'[34] दादा गुण्डा होते हुए भी सच्चे दिल का ईमानदार व्यक्ति था, उसमें मानवता कूट-कूटकर भरी हुई थी। दादा नूर से कहता है - 'दर असल मैं बहुत बुरा हूँ तुमसे उम्र में भी ज्यादा हूँ सुरत-शक्ल भी अच्छी नहीं मेरी ---- पर तुम पावोगी दिल मेरा इतना बुरा नही है, जितना मैं बाहर से दिखता हूँ तुम्हारी मासूमी का पाकसाया मेरे गुनाहों को नेस्तनाबूत कर देगा ऐसी उम्मीद है। तुझे फिर अगर मेरी जिंदगी में आने के बाद भी कोई ज्यादा माकुल आदमी मिल सके तो मैं रोकूँगा नही तुझे तुम्हें हक रहेगा जिसे तुम्हारा दिल चाहे उसकी जिंदगी आबाद करो।'[35] यहाँ दादा की मानवता एक संत की मानवता से भी ऊँची लगती है।

वीरेन जब दादा के झोपडे में पहुँचता है तब विठ्ठल के हाथ में गिला कपडा बाँधनेवाली रेवा को देखकर सोचता है - 'वह भीख माँगनेवाला छोकरा, वह स्वामी, वह विठ्ठल ये चोर बदमाश कहलानेवाले किस तरह अपने मानस मंदिर में इन्सानियत का दिया जलाये रहते हैं। इन्सानियत का दिया उनके हृदय में इतनी दूरी में जलता रहता है कि बाहर से उसकी एक किरण भी दृष्टिगोचर नहीं होती - पर वह दिया कभी बुझता नही। ---- गरीब को इन्सानियत ध्रुव है।'[36] यहाँ पत्थरों में भी देवता का निवास होता है, इसके दर्शन होते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास के लेखक शैलेश मटियानी ने बुरे करतुत करनेवाले गुण्डा दादा, विठ्ठल और अन्नास्वामी जैसे बुरे पात्रों को सच्चे राह पर लाकर छोडने का अच्छा काम किया है, ऐसा लगता है। अपने बुरे कुकृत्यों के प्रति ये पात्र अंत में पश्चाताप व्यक्त करते हैं और सन्मार्ग का रास्ता अपनाते हैं। स्वामी को गैरकानून गंदे काम करने के लिए बाध्य करनेवाले सेठजी को उद्देश्यकर स्वामी कहता है - 'सेठ, तुम लोग हमरे को शिकारी कुत्ता समझते हो --- हलकट काम करने को तुम एक हजार दे सकते कईसा क्या ईमानदारी की जिंदगी बसर करने के लिए सौ

छापेया भी नहीं?---- थूँ हे तुमेरी दौलत पर।'[37] स्पष्ट है कि पूँजीपतियों के कारण ही इन लोगों को इस तरह के अमानवीय काम करने पडते हैं परंतु अंत में जब उन्हें पता चलता है तब दानव बने हुए झुग्गी के निवासी मानव बन जाते हैं। जैसे वाल्या का वाल्मिकी बना वैसे गुण्डा युसुफ दादा और स्वामी में भी अमूलचूल परिवर्तन देखने को मिलते हैं।

इन झुग्गी-बस्तियों में भविष्य के प्रति औदासिन्य, आपसी प्रेम-सम्बन्ध, भोगासक्त जीवन, नारी की दयनीय स्थिति, लोफरों की दुनियाँ, खान-पान, दुर्दैव के शिकार लोग, मूल्यविहीनता, अंधःविश्वासी लोग, आपसी ईर्षा, द्वेष, मुँगरापाडा की बस्ती का नंगापन आदि के भी दर्शन होते हैं।

निष्कर्ष :-

शैलेश मटियानी ने प्रस्तुत उपन्यास में झोपडपट्टी में स्थित लोगों की बेकारी, दरिद्रता, अर्थाभाव, वेश्या-वृत्ति, अविश्वास, प्रेमसम्बन्ध, उज्ज्वल भविष्य के सपने, घर-बार छुटने का दर्द, मानवता, पुलिस आतंक, मजबूरी, अवैध धन्धें, अवैध सम्बन्ध, नारी की दयनीय स्थिति, गुण्डों का आतंक, अतिथ्य सत्कार की भावना, खान-पान, लोफरों की दुनिया, भोगासक्ती, भविष्य की चिन्ता, मूल्यविहीन जीवन, नशापान, आपसी ईर्षा, गुण्डों में स्थित मानवीयता, ठगाई गयी औरतों की दुर्गति, आपसी संघर्ष, मार-काट आदि का चित्रण करके झोपडपट्टी जनजीवन को अत्यंतिक यथार्थता के साथ चित्रित किया गया है। यहाँ के पात्र अंत में पश्चाताप-दग्ध होकर अपने बुरे कुकर्मों को छोडकर सन्मार्ग पर आते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक की मार्क्सवादी विचारधारा के साथ गांधीवादी विचारधारा का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है।

'मुरदाघर' - 1974 : जगदम्बाप्रसाद दीक्षित :-

जगदम्बाप्रसाद दीक्षितजी ने 'मुरदाघर' में झोपडपट्टी जनजीवन का चित्रण अत्यंतिक यथार्थता के साथ करके वहाँ के गंदगीपूर्ण जीवन का चित्रण किया है। ये लोग रेल-लाईन की ढलान पर, गंदी नालियों के किनारे खडी इन झुग्गियों में जीवनयापन करते हैं। इन झोपडियों में चारों तरफ गंदगी का वातावरण रहता है। श्याम निकलते ही नल पर बर्तनों की कतारें लगती है, सडे हुए कूडा और करकटके पुराने ढेर में से हवा के बदबूदार झोंके बहते हैं। कोढियों की, खुजलीवाली कुत्तियों की संख्या वहाँ पर देखने को मिलती है। इस कूडा-करकट पर सुअरों के पिल्ले, जली हुई सिगरेट के टुकडे, जूठन और इस जूठन को तलाशनेवाले झोपडपट्टी के दरिद्री लडके देखने को मिलते हैं। जगदम्बाप्रसाद दीक्षित ने इस वातावरण का चित्रण करते समय लिखा है - 'इसी वातावरण में एक पागल आदमी कुछ तलाश कर रहा है, उसे कुछ भी नहीं मिलता

है। आदमी और जानवर में कुछ फर्क नहीं रह गया है, कौवे, कुत्तें, पागल औरतें चीख रहे हैं।'[38] स्पष्ट है कि ये लोग अत्यंतिक गंदगी में रहते हैं। उनके इर्द-गिर्द मक्खियाँ भिन-भिनाती है। इन बस्तियों में रहनेवाली औरतें कपडे तथा बालों की निगाहें अच्छी नहीं रखती, परिणामतः इन औरतों के बालों में जुये पड जाते हैं। नयना चंद्री के बालों के जुअे मारती है, सभी रण्डियों के सिर जुओं से भरे हुए हैं। यहाँ झुग्गी-झोपडपट्टी में रहनेवाले लोगों की शारीरिक अस्वच्छता पर लेखक ने संकेत किया है।

डॉ. चंद्रकांत बांदेवडेकरजी के मतानुसार - 'बम्बई महनगरी के नारकीय जीवन को उपन्यास का क्षेत्र बनाकर जगदम्बाप्रसाद दीक्षित ने झोपडपट्टी जनजीवन के कटु, गंदे और घोर रूप में विभत्स यथार्थ को, कलात्मक स्पर्श देते हुए जीवित किया है और लोकप्रियता के सभी नुस्कों का परित्याग करके जोखिम भी उठाया है।'[39]

प्रस्तुत उपन्यास में विस्थापन से संत्रस्त झोपडपट्टी जनजीवन पर भी लेखक ने चिंतन किया है। महानगरीय जनजीवन में औद्योगिकरण के विकास के परिणामस्वरूप ग्रामांचलों की तरफ से महानगरें में उदरपूर्ति के बहाने जानेवाले मजदूरों की भीड लगी रहती है। ये मजदूर महानगरीय परिवेश में जहाँ भी खाली जगह मिले वहाँ झोपडपट्टी बनाकर रहने लगते हैं। महानगर की झोपडपट्टी की सुधार योजना के कारण अवैध जगह पर बसी हुअी झुग्गी-झोपडियों को उजाड दिया जाता है, तोडा जाता है और इन लोगों के सामने अस्थिरता का प्रश्न खडा रहता है। जगदम्बाप्रसाद दीक्षितजी ने अस्थिर जीवनयापन करनेवाले झोपडपट्टी जनजीवन पर भी अपनी दृष्टि केन्द्रित की है। जहाँ पर ये लोग अपनी झुग्गियाँ खडी कर देते हैं, वहाँ पर पुलिस आती है इन झोपडियों को अवैध घोषित करके उनकी झोपडियाँ तोडी जाती है। इन लोगों की तरफ सहानुभूति दर्शाते हुए दीक्षितजी लिखते हैं - 'इन लोगों को आजादी अभी तक नहीं मिली है।'[40]

एक दिन सुबह पुलिसों का आना, गंदी बस्ती को पुलिसों द्वारा घिराव डालना, नीली गाडियों से हाथ में लम्बे-लम्बे बेंत के डंडे लेकर पुलिसों का उतरना और हुक्म मिलते ही झुग्गी-झोपडियों को तोड देना इन घटनाओं पर अभिप्राय व्यक्त करते हुए लेखक कहते है - 'पीली रोशनी में नंगी हो गयी दुनिया। कालिक लगे बर्तन---- मैली पतिलियाँ----- गुदडियाँ ---- रोते हुए बच्चे-----।'[41] इस असहाय्य स्थिति में इन लोगों का स्थलांतर होता है। तोडी गयी झोपडियों के लोग अन्यत्र जाकर बसते हैं। उनके साथ रण्डियाँ भी आने लगती है, एक के बाद एक दूसरी तरफ झोपडें बनने लगते हैं। चौडी सडक के किनारे या रेल-लाईन के ढलान पर फिर झुग्गियाँ बसने लगती है। 'गगनचुम्बी महल की चमकीली दुनिया के पास यह गंदी दुनिया बस जाती हैं।'[42]

इसी तोड-फोड में रोजी का झोपडा ध्वस्त होता है। इस जगह से सब चले जाते हैं। इस हालत में रोजी फुटपाथ के एक अन्धेरे कोने में बैठकर गुदडों के बीच एक मैले डिब्बे में रखी हुअी चंदू की तस्वीर देखती है, जिसे दो रूपये में रोजी ने खिंचा था, परन्तु चंदू तब से कही चला गया अब तक वह वापस नही लौट आया। इस असहाय्य हालत में रोजी उसकी तलाश करती है, उसका इन्तजार करती है। लेखक ने रोजी के इस असहाय भावविश्व पर प्रकाश डाला है। और झोपडियाँ तोडने के बाद बेसहारा औरतों की कितनी असहाय स्थिति होती है इसपर पाठकों को सोचने के लिए बाध्य किया है।

झोपडियाँ तोडने के बाद फुटपाथ पर लोग सहारा लेते हैं, ऊपर से पानी बरसने लगता है। पानी थमते ही नीली वर्दीवाले पुलिस आकर फिर उनके आश्रयस्थान को तोडती है। 'तोडे गये छप्पर, बिखर गये टुकडे, सामान की गठरी, दो महिने का बच्चा, फिर वही दूसरे जगह की तलाश, यहाँ से वहाँ ---- वहाँ से हर जगह। रेल के पटरियों के किनारे ----- चादर की काली चट्टानों के ऊपर, सुबह का सवाल शाम तक ---- और दूसरी सुबह तक ---- बनते हैं झोपडें ---- टुटते चले जाते है।'[43]

पुलिस द्वारा झोपडें तोडते ही मैना इधर से भागकर शिवडी गयी। अपने पति के सानिध्य में वह रहना नही चाहती, कारण उसका पति पोपट हरामी है साक्षात जानवर है।

'मुरदाघर' में वेश्या व्यवसाय पर भी लेखक ने गहराई से चिंतन किया है। जगदम्बाप्रसाद दीक्षितजी ने इस उपन्यास में परम्परागत दृष्टिकोण को अपनाकर झुग्गी-झोपडियों में अभावग्रस्त वेश्याओं का चित्रण किया है। डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकरजी के मतानुसार - 'वेश्या को घृणित तथा तिरस्कृत रूप में देखा जाता था। वेश्याओं की आवश्यकता गाने बजाने या नाचने का पेशा करने के लिए थी। उनके अभाव में अन्य लेखकों को डर है कि सभ्य समाज की कन्याएँ इसी पेशे को अपनायेगी और दूसरा डर यह भी है कि वेश्याओं के अभाव में अच्छी बहु-बेटियों की बिगडने की या शीलभ्रष्ट हो जाने की संभावना है।'[44] जगदम्बाप्रसादजी का दृष्टिकोन इसी कसोटी पूरा जतता है।

जगदम्बाप्रसाद दीक्षितजी ने 'मुरदाघर' में अभावग्रस्त और रोजी-रोटी के प्राप्ति के लिए महानगरीय झुग्गी-झोपडियों में वेश्या-व्यवसाय कैसे चलाये जाते है इसका चित्रण अत्यंत यथार्थता के साथ किया है। महानगर के उच्छिष्ट पर पली हुई झुग्गियों में देह-विक्रय करके अपना पेट पालनेवाली अनेक औरतें रहती हैं। मैनाबाई, बशीरन, नयी लडकी, हसीना, मंगला, रोजी, चंदरी, हीरा, नयना, सुभद्रा, नूरन, पारबती, काली लडकी, तारा आदि औरतें इन धंदी औरतों का

अच्छा उदाहरण हो सकती हैं। जगदम्बाप्रसाद दीक्षितजी ने इन औरतों की अभावग्रस्तता पर अच्छा प्रकाश डाला है। मैनाबाई का बस-स्टाप पर खडी रहकर ग्राहकों की तलाश में लगते रहना, ग्राहक का न मिलना, गजरा खरिदकर बालों में लगाकर सडक के किनारे खडी रहना, गजरे के मुरझाने पर भी ग्राहक का न मिलना इन घटनाओं से यह स्पष्ट होता है कि ग्राहकों की तलाश में ये नारियाँ कितनी मजबूर हैं। ग्राहक के न मिलने पर इन रण्डियों को कल की चिंता सताने लगती है। लेखक इसपर प्रकाश डालते हुए लिखता है - 'हर सुबह ---- हर शाम ---- एक ही सवाल ---- कैसे चले चुल्हा?'[45] इन औरतों के ग्राहक किस्तये, कार ड्रायव्हर, मजदूर, कुली रहते है। उदरपूर्ति के लिए इनके साथ सम्बन्ध रखकर ये स्त्रियाँ अपने अभाव को मिटाती है।

उदरपूर्ति के लिए वेश्या-व्यवसाय करनेवाली इन औरतों के खिलाफ सफेदपोश अमीर आवाज उठाते हैं। इन अमीरों की शिकायत पर पुलिस अफसर झुँझलाकर इन रंडियों की पीटाई करते हैं। लेखक ने यहाँ प्रस्तुत की हुई सफेद-पोश अमीरों की प्रतिक्रियाएँ देखिए - 'ये आवारा औरतें बदबू और अंधेरे में जाती है दूसरी तरफ से। रोको इन्हें। सरकार ---- पुलिस --- क्या करते हैं सब ---- रहना मुश्किल है शरीफ लोगों का।'[46] पूँजीपति और झुग्गी-झोपडीवालों के बीच का यह टकराव विषम आर्थिक व्यवस्था का योगदान लगता है। अमीरों की शिकायत पर पुलिस इन पर अनन्वित अत्याचार करते हैं जैसे - 'मारो डण्डे इन '----' को ---- तोड दो टंगडियाँ सालियों की ----- खबरदार जो पैर रखा इस तरफ।'[47] यहाँ स्पष्ट है कि अमीरों के इशारे पर पुलिस इन गरीब लोगों पर हमला करतीं हैं। पुलिस की बेरहमी से होनेवाली पीटाई से बशीरन रोती है। इस पर हवलदार गालियाँ देते हुए कहता है - 'इसकी माँ की ---- ले जाओ साहब के पास।'[48] अधिक उम्र होने के कारण बशीरन को छोड दिया जाता है, अन्य वेश्याएँ भाग जाती है।

ये वेश्याएँ आपस में झगडती है, एक दूसरी को गालियाँ देती है, पुलिस को भी गालियाँ देती हैं। इन वेश्याओं में आपसी ईर्षा-द्वेष रहता है। ग्राहक की प्राप्ति न होने के बाद मैना बशीरन से ईर्षा करते हुए कहती है - 'बशीरन की बच्ची --- कितने खा गयी और कितने खायेगी। येइच है रण्डी --- सारा धन्धा चौपट कर दिया। आगे-आगे नाचती है हमेशा।'[49] मैना बशीरन को गालियाँ देती है - 'सबी के चुल्हे बंद कर देने के पीछे का कारण बशीरन को मानती है। पारबती भी बशीरन की उपेक्षा करती है। नूरन ने उसके साथ बोलना बंद कर दिया गया है।

ग्राहकों को अपनी ओर खिंचने के सम्बन्ध में वेश्याओं में संघर्ष शुरू होता है। मैना-बशीरन का संघर्ष इसका अच्छा उदाहरण हो सकता है। मैना बशीरन को उद्देशकर कहती है - 'बशीरन साली, कुत्ती की अवलाद, नई जाती थी तू दौड-दौड के उधर? बाबू डिरेवर मेरे कने आता

था, तो तू कायकूँ मरती थी बीच में ---- मैं कभी आयी क्या तेरे बीच में जभी शेरू मेरे को पाँच रूपया देता था तू कायकूँ तैय्यार हो गयी दो रूपया में।'[50] बातों-बातों में दोनों में हाथा-पायी शुरू हो गई। फुटपाथ पर सोनेवाली सभी पिय्यकड कुलियों का वहाँ मौजूद होना, नूरन, पारबती, शांती द्वारा उन दोनों को रोकना। मैना द्वारा बशीरन के बाल पकडकर बशीरन को थप्पडें मारना। बशीरन में भी चेतनाप्रवृत्ति का जागृत हो जाना और मैना को गालियाँ देना। ये सारी घटनाएँ ग्राहक प्राप्ति के लिए संघर्ष के दर्शन करा देती है। इस बढते हुए संघर्ष को मिटाने का प्रयत्न कुली, किस्तैय्या, रंडियाँ सब करते हैं, परन्तु यह संघर्ष नही मिटता है। इतने में पुलिस दारोगा वहाँ पर उपस्थित होता है और संघर्ष मिट जाता है।

इस व्यवसाय में प्रविष्ट नई युवतियाँ धोखे से इस विश्व में पदार्पित होती है। इस झोपडपट्टी में आयी हुयी नयी लडकी का प्रवेश इसका अच्छा उदाहरण हो सकता है। रात्री में अब्बास ड्रायव्हर इस लडकी को इस बस्ती में छोडकर गया है। वह लडकी न नाम बताती है, न गाँव बताती है सिर्फ रोती रहती है। इस बस्ती की रंडियाँ ग्राहकों की तलाश में सज-धजकर बैठती हैं। शराब प्राशन करके अपने ग्राहकों से मिलती हैं। इन्हें मिलनेवाले ग्राहक भी अभावग्रस्त होते हैं। नयना के पास आये हुए छोकरे के पास सिर्फ पचास पैसे है इसलिए नयना उसे गालियाँ देती है। अपने घर-परिवार को छोडकर आये हुए कई मजदूर इन औरतों के पास अपना वक्त निकालने के लिए जाते है। दूधवाला भैय्या पूरे सालभर गाँव नहीं जाता फिर भी ऐसी गैर औरतों से हाथ लगाना वह अच्छा नहीं मानता परंतु मंगला इस दूधवाले की औरत बनकर उसके घर में रहना चाहती है, उसपर जोर-जबरदस्ती करके उसे कल रात आने को कहती है।

अवैध मातृत्व रंडियों के लिए अभिशाप लगता है। असावधानी से जब रंडी औरतें गर्भवती बन जाती है तब उनका धन्धा डूब जाता है और रोजी-रोटी में खलल पडती है। मरियम इसका अच्छा उदाहरण है। ग्राहक को पाने के लिए होड करनेवाली मंगला, नूरन और चंदरी में भी झगडा शुरू हो जाता है। इस स्थिति पर प्रकाश डालते हुए मंगला कहती है - 'तुम कोई इधर नई आना। अभीसेच बोलती मैं। मैंच पटाऊँगी इसकूँ।'[51] इसपर बिगडकर नूरन कहती है - 'क्यूँ पटायेगी तूच। नाम लिखा के लाई क्या?'[52] मैना सभी रंडियों को धमकाती है परंतु वह मनचला ग्राहक तीन रूपये देने को इन्कार करता है। तीन रूपये न देने पर मंगला उस मनचले के साथ प्रेम का नाटक करती है, दिल तोडकर मत जाने को कहती है, इतना करने पर भी मनचला तैयार नहीं होता है और चायपान के लिए भी कुछ पैसे नहीं देता है तो मंगला उसे गालियाँ देती हुई कहती है - 'गाण्डू, साला हिजडा। --- बंदर की अवलाद।'[53] यहाँ ये औरतें ग्राहकों के साथ सौदा करते समय कितनी चतुराई से सौदा करती है इसका पता चलता है। हिरा के साथ रात के अंधियारे

में बातें करनेवाला टैक्सीवाला भी हीरा के साथ सौदा नही पटाता। चंदरी को कोई बोरूवाला हमाल मिल जाता है। बहुत प्रयत्न के बाद हीरा को टैक्सीवाला प्राप्त होता है परंतु वह पूरी रात की कीमत पूछता है हीरां पूरी रात के लिए तैयार नहीं है और टैक्सीवाला भी अपनी बात पर अडीग रहकर वहाँ से चला जाता है। नयना को बहुत प्रयत्न के बाद ग्राहक मिल जाता है। नूरन भी ग्राहक के लिए प्रयत्न कर रही है। इन वेश्याओं पर पुलिस हमेशा के लिए अत्याचार करती है। उनपर आतंक जमाकर उनसे रिश्वत लेती है। पारबती, जमीला, नयना पुलिस की आँखोंसे बचकर अंधियारें में अपने ग्राहकों की तलाशी करती है। इन स्त्रियों की तरफ समाज का देखने का रवैय्या उपेक्षित होता है, ऐसे नारियों की समाज उपेक्षा करता है। इसपर प्रकाश डालते हुए मैना नयी छोकरी से कहती है ---- 'मेरा-तेरा जैसा इन्सान को उधर भाँडी घासने को भी नई मिलता। समझी क्या ? मिलेगा भी तो लोग अपने से बेच काम करनेवाला है। मैं सब करके देख ली। सादी भी बनवाई ------- तो भी वो का वोचा'[54] ये नारियाँ चाय-पान के भी आसानी से प्राप्त नहीं करती। अवैध धन्धें के कारण पुलिस उन्हें हवालात में बद कर देती है, बुरी तरह से पीटती है। ये औरतें बीडियाँ पीना, शराब-पान करना, तफ़रीह माँजना आदि आदतें रखती हैं। ये औरतें निराश्रित स्थिति में जिन पुरूषों के सान्निध्य में कई रात्रियाँ गुजारती है उनके आश्रय की आशाएँ रखती हैं, परन्तु पुरूष जाति की आत्मकेन्द्रित प्रवृत्ति के कारण उन्हें ऐसे पुरूषों का सहारा नहीं मिलता है। सुभद्रा और काली लडकी तारा इसके अच्छे उदाहरण हो सकते हैं। हवालात में बंद होने पर काली लडकी जमानत के लिए बाबू भाई की तलाश करती है परंतु बाबूभाई इसे पहचानता तक नहीं। सुभद्रा अपनी रिहाई के लिए नारायण घाडगे के नाम खत लिखती है परंतु फुटपाथ पर रहनेवाला और अस्थिर जिंदगी जिनेवाला नारायण घाडगे फिर कभी नहीं मिलता। लेखक ने नारायण घाडगे की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखा है - 'वह कभी हमाली करता है तो कभी बढई का काम करता है तो कभी पाकिटमारी करता है।' भावविवश सुभद्रा नारायण घाडगे का पूरा पता न होने पर भी उसके खत पर पता लिखती है - 'बोरीलैन का फुटपाथ --- भीमजी भाई बनिया का दूकान का सामनेवाला जगहा ---- कामाठीपुरा नाका।'[55] जमानत के लिए इन्तजार करनेवाली सुभद्रा को नारायण घाडगे कभी नहीं मिला। ये रंडियाँ असाध्य रोगों से बिमार होती हैं। इन्हें गरमी, परमा जैसी बिमारियाँ होती है। गरमी से पीडित जेल में बंद एक रंडी औरत की ओर संकेत करती हुई मंगू इस बात पर प्रकाश डालती है। - 'ये नारियाँ नशापान के आदती होती हैं। मैना शराब पीती है, पारबती कबाब खाती है, सिगरेट पीती है।'[56] इन रंडियों के विश्व में कहीं - कहीं पर मानवता के दर्शन भी होते हैं। पोपट की मौत के बाद मैना की

सहायता करने के लिए बशीरन उपस्थित होती है। इसमें बशीरन की मानवता देखने योग्य है। मरियम की प्रसूती वेदना में अन्य रण्डियाँ उसकी सहायता करती हैं। इसमें भी मानवता के दर्शन होते हैं।

संक्षेप में झुग्गी-झोपडियों में पनपनेवाली वेश्या-प्रवृत्ति नारी-जीवन के लिए एक अभिशाप लगती है। आर्थिक दुर्बलता, विशिष्ट मनोवृत्ति इस अभिशाप के पीछे के कारण हो सकते हैं। यह एक अत्यंत गंभीर समस्या है। स्वस्थ समाज और प्रगतिशील राष्ट्र के लिए यह एक कलंक है। इसी के परिणामस्वरूप साहित्य और समाज के स्वस्थ सम्बन्ध से साहित्यकारों की समाजोन्मुख चेतना का वेश्या-प्रवृत्ति जैसी गंभीर स्थिति की ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक लगता है। इस दिशा में जगदम्बाप्रसाद दीक्षितजी ने बहुत महत्वपूर्ण योगदान निभाया है।

इन झुग्गी-बस्तियों में अतीव दारिद्रय के दर्शन होते है। इस बस्ती की वेश्याओं में दारिद्रय का साम्राज्य छाया हुआ देखने को मिलता है। मैना इसका अच्छा उदाहरण है। वह दरिद्री नारी है। वह उदरपूर्ति के लिए वेश्या-व्यवसाय करती है। ग्राहक ढूँढने के लिए दर-दर की ठोकरें खाती है। सबेरे काले चाय के साथ पाव-रगडा खाती है। भूख के कारण लडखडाती है। उसका जिस्म टूट जाता है। उपवास-पर-उपवास उसे करने पडते हैं। मैना भूख के कारण तिलमिला उठी है। पोपट उसे मिलता है, 'एक 'पाव-रोटी' --- दो टुकडे। खाते हैं दोनों। पीते हैं पानी। एक कप चाय के दो भाग करते हैं।' यहाँ दारिद्रय के भयावह दर्शन होते हैं।

इन झुग्गी-झोपडियों में सदैव दारिद्रय पलता रहता है। इस पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने लिखा है - 'झुग्गी के छोटे-छोटे लडके होटल के पिछे डिब्बें के पास घूम रहे हैं। आज का जूठा खाना --- फेंका नहीं गया अब तक। बस हो गया है टैम ---- ये राजू ये कुत्ते कू फत्तर मार ---- साला आकर डालेंगा मूँ।'[57] इससे स्पष्ट होता है कि झुग्गियों में दारिद्रय के कारण इन लोगों की भयंकर स्थिति है। इस जूठन को खाने के लिए झुग्गी बस्तीवाले इकठ्ठा होते हैं। कुत्ते भी दूर से चक्कर काटते हैं, कौवे भी मँडराने लगते हैं। बच्चे भी जूठन की तलाश में लगे रहते हैं। कुछ न मिलने पर अतीत के दिनों के मिले हुए जूठन की याद करते करते संतोष पाते हैं। इन बस्तियों के बच्चें होटल के पिछवाडे का दरवाजा खुलते ही 'एक कनस्तर में रखे हुए चावल, रोटी, पाव, हड्डी, दाल, मच्छी, सडा हुआ ---- बदबू देखते ही दौडते हैं।'[58] भिन-भिनानेवाली मक्खियों को हटाकर जूठन पर झडी लगाते हैं। कुत्ते हठ नहीं सकते हैं। बडे-बडे छोकरे भी वहाँ आते हैं। मैना का बेटा राजू माँ की भूख से बेहाल हुयी स्थिति को देखकर, पाव के टुकडे मैना के पास रख देता है, परन्तु उसी समय झोपडें में स्थित मटके में पानी नहीं है। इस हालत में मजबुर होकर थकी हुई मैना रोजी-रोटी के लिए अपने जिस्म

को सजाने लगती है। इन झुग्गियों में स्थित लोग दरिद्रता को मिटाने के लिए कई छोटे-मोटे प्रयत्न करते हैं एक आदमी चिल्ला-चिल्लाकर लोगों को तालियाँ बजाने के लिए बाध्य करने के लिए कहता है - 'ये मेरा चार साल का छोकरी इतना बडा पत्थर उठायेगा पेट के वास्ते ----गंदा फटा फराक----- मैले हाथ-पैर ---- नहीं उठता पत्थर---- गालियाँ दे रहा है बाप --- पेट के वास्ते।'[59] कितना भयंकर दारिद्रय लेखक ने यहाँ चित्रित किया है। बिमार हालत में रोजी दारिद्रय के कारण दवा-पानी नहीं कर सकती। वह कहती है - 'एक आदमी मेरे कूँ बोला ---- तू परेल के हॉस्पिटल में जा बोलके। पन पैसा किधर इतना दूर जाने के वास्ते।' इस उपन्यास में लेखक ने महम्मद की अभावग्रस्तता पर झोपडपट्टी के बच्चों के माध्यम से प्रकाश डाला है। महंमद के पास एक ही लूँगी है इसलिए वह रात्री के अंधियारे में नंगा होकर नहाता है। इस घटना से झोपडपट्टी के दारिद्रय पर पूरा प्रकाश पड जाता है।

रोजी अपने दारिद्रय के कारण स्टेशन के पास जाकर भीख माँगती है, जहाँ पर अंधे, कोढि, लँगडे, अपाहिज लोग, गिड-गिडाकर भीख माँगते हैं। रोजी इस कोलाहल में चुपचाप खुद को बैठने के लिए जगह तलाशती है। वह एक अंधे कोठी और अपाहिज के पास बैठती है। वहाँ की एक बुढिया भिखारी चिल्ला-चिल्लाकर कहती है - 'ये बाबूसाब। ये भाई। एक पाँच पइसा ---- चा के वास्ते। सुबू से कुछ नई खाया ---- दादा बुढी पर दया। ---'[60] इन भिखारियों में ऐसी होड लगी रहती है कि वे एक दूसरे को बैठने के लिए जगह भी नही देते हैं। कोढी रोजी का अपने पास बैठने के बाद अपनी आय कम होगी इसका उन्हें डर है। अभावग्रस्त दरिद्री रोजी जब्बार की मदद करने के लिए भीख माँगने का काम करती है। भूख से ग्रस्त भिखारी ख्वाजा की दर्गाह पर चले जाते हैं जहाँ उन्हें मुफत में खिमा, पाव, हलुवा मिल जाता है। ये लोग गिध्दों एवं कुत्तों की जिंदगी जीते हैं। दर्गाह की पास की भीड से इस पर प्रकाश पडता है। इस बस्ती में दारिद्रय इतना छाया हुआ है कि पोपट के शव को अपने काबू में लेकर उसका अग्नि-संस्कार करने के लिए भी मैना के पास पैसे नहीं हैं। इसलिए मुरदाघर में रखे गये पोपट के शव का अंतिम क्रिया-कर्म करने के लिए मुरदाघर के रक्षक के पास मैना और बशीरन कहती है - 'धर्मादाय की सहायता से उसका अंतिम-संस्कार करो।' परन्तु अंत में इतने मुरदों का अंतिम संस्कार करना धर्मादाय प्रतिष्ठानों को भी अपने बस के बाहर का लगता है। इसपर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए खाकी वर्दीवाला कहता है - 'ओ छोकरा जो इधर पढने के वास्ते आता उनका काम में आयेगा। हड्डी का भाव बहुत ज्यास्ती है आजकल। पूरा जिसम का ढाँचा का भाव तीन सौ रूपया चलता है।'[61]

अतीव दारिद्रय से ग्रस्त मैनाबाई पोपट के मुरदे को मुरदाघर में सलाम करके चल पडती है। इस प्रकार भयावह दारिद्रय के बीच संघर्ष करनेवाले इन लोगों की तरफ अपनी सहानुभूति दर्शायी है। दारिद्रय इन लोगों के लिए अभिशाप है इसका पता यहाँ चलता है।

झोपडपट्टी जनजीवन में अतीव दारिद्रय छाया हुआ रहता है। इस दारिद्रय के अंधःकार को पाटने के लिए कई अवैध धन्धें ये लोग करते हैं। कच्ची शराब बेचना, छोटी-मोटी चोरियाँ करना, पाकिटमारी, कालाबाजारी करना, तस्करी करना, भीख माँगना, वेश्या-व्यवसाय करना आदि उनके अवैध धन्धें होते हैं। जगदम्बाप्रसाद दीक्षितजी के 'मुरदाघर' में झोपडपट्टी जनजीवन में स्थित अवैध धन्धों पर सूक्ष्मता के साथ चिंतन किया है। मोटे पाईप के पास किस्तैय्या किसी आड के सहारे कच्ची शराब बेचने का काम कर रहा है। गिलास-पर-गिलास भरता है। मैना जैसे नशापान के आदती वेश्या उधार के रूप में शराब माँगती है। कुली, मजदूर शराब के इस अड्डे पर भीड कर खडे हैं। वह अपने ग्राहक एक-एक करके भेज देता है। स्पष्ट है कि यहाँ कच्ची शराब पीनेवाले निम्न स्तर के मजदूर लोग होते हैं इसका पता चलता है।

ये लोग रात की सुनसान खामोशी में मटके का व्यवसाय करते है। 'पूल की सीढियों के पास जमघट ---- नम्बर खेलनेवालों का।'[62] इस झोपडी में कई दादा भी रहते हैं जो कच्ची शराब बेचने का धन्धा करते-करते रण्डी का होटल भी खोल देते हैं, पैसा कमाते-कमाते आगे चलकर वे अन्य अवैध व्यवसाय करने लगते हैं। पोपट इस पर प्रकाश डालते हुए कहता है - 'इस्मगलिंग! पाँच साल के अन्दर वह बन गया लखपति। बडा-बडा बिल्डिंग है उसका। पुलिस का सब बडा साब लोक कूं पार्टी देता, बडे-बडे मिनिस्टर लोग उसकूँ अपने घर बुलाते है।'[63] पोपट भी हाजीसेठ जैसा अवैध धन्धा करके धन्नासेठ बनना चाहता है। वह बडे-बडे बिल्डिंग की अपेक्षा नहीं करता सिर्फ वह एक कमरे की चाह रखता है, एक कमरे की प्राप्ति होते ही वह ये सब गैरकानूनी धन्धें छोडना चाहता हैं। ये लोग ताश खेलते हैं, जुआ खेलते हैं। पूल की सीढियों के नीचे छोकरे ताश खेलते हैं आठ आनेवाले छोटे-छोटे। दो-दो बीडियों का जुआ खेलते है और जुए का खेल खेलते-खेलते एक दूसरे को गंदी गालियाँ भी देते हैं। उदरपूर्ति के लिए ये लोग छोटी-छोटी चोरियाँ भी करते हैं। जब्बार चोरी के गुनाह में तडीपार हुआ है। वह रोजी से कहता है - 'गोरेगाव के एक मकान में घुसा था। माल कुछ अधिक नहीं मिला ---- छोटा साब बहुत मारा मुझको ---- पटक --- पटक के ---।'[64] जब्बार अपनी चोरी की स्वीकृति देते हुए रोजी से कहता है - 'चोरियाँ करता मैं --- करके तडीपार किया।'[65] जब्बार अपनी चोरी करने की प्रवृत्ति को रोजी के सामने प्रस्तुत करता हुआ कहता है - 'चोरियाँ तो मैं पहले भी करता था, रोजी। पण भोत कम थी। जब से निका किया हसीना के साथ ---- जास्ती चोरी किया और

जबसे हो गया ये अमजद तो पूछो मत। कितना चोरी किया ---- कुछ हिसाबच नई और ये साला लोग ---- कर दिया मेरे को तडीपार।'[66]

यहाँ लेखक ने ये लोग उदरपूर्ति के लिए और परिवार के भरन-पोषण के लिए चोरी करने की ओर कैसे मुडते हैं इसका अच्छा चित्रण किया है। इस उपन्यास में चित्रित काली लडकी भी चोरी के जुल्म में पकडी गयी वह लैला को पुलिस द्वारा अपने को क्यों पकडाया गया इसका कारण देती हुई कहती है - 'अपुन क्या बडा चोरी करेगा। इधर-उधर छोटा-मोटा कुछ मिल गया तो ले लिया, कोई का शर्ट---- लँगा---- बनियान---- बाहर किधर भी सूकता होंगा। मोक्का मिलेंगा तो आपुन उठा लेंगा। ले जाके देंगा बाबू भाई को---- एक टैम का खाना भी मिला तो मौत।'[67] काली लडकी को इस चोरी के मामले में बाबू भाई से सिर्फ एक वक्त का खाना मिलता था। बाबू भाई उसका मरद होने के बाद भी उसे दो वक्त का खाना नहीं खिला देता। तडीपार होने के बाद भी जब्बार अभावग्रस्तता में और भी चोरी करना चाहता है। उसे चोरी न करने की सलाह देनेवाली रोजी को उद्देश्यकर वह कहता है - 'नई करना तो क्या करना?' डूब के मर जाना दरया में ---- जेब खाली।'[68] यहाँ स्पष्ट पता चलता है कि अपने अभाव को भरने के लिए ये लोग चोरियाँ करते है।

झुंगी-झोपडियों में बसे हुए अपाहिज, कोढी, अंधे, लँगडे हर दिन रेल-स्टेशन पर आकर भीख माँगने का धन्धा करते हैं। आने-जानेवाले लोगों को गिड-गिडाकर कहते हैं - 'बाबू साहब। सेठ साहब। परमात्मा तुमको बरक्कत देंगा, नौकरी --- धन्धा ---- रोजी ----- रोजगार। हाजी-मलंग बाबा ----- पैसा ---- दो पैसा ---- पाँच पैसा जो दे उसका भला ना दे उसका भी भला।'[69] ये भिखारी भीख माँगने में भी एक दूसरे से होड करते है। अपने व्यवसाय पर किसी असाध्य बिमारीवाले मरीज के कारण आँच न आने पाये इसकी तरफ वह सतर्क रहते हैं। दर्गाह के पास चिल्ला-चिल्लाकर अधिक खाना बटोरने की कोशिश करते है। ये लोग श्रम के आधार पर पैसा कमाना नहीं चाहते, कम श्रम में अधिकाधिक और जल्द-ही-जल्द पैसा कमाना चाहते हैं। पोपट इसका अच्छा उदाहरण हो सकता है। जब्बार और दौलत मिलकर एक तस्कर के घर में घुसकर चोरी करना चाहते है। उनका तर्क है कि - 'ये पैसा तस्करी का है ---- काला पैसा उन्हें लगता है कि ये लोग पुलिस में नहीं जायेगा।'[70] इस गलत धारणा के कारण जब्बार फिर पकडा जाता है और पुलिस उसे बेरहमी से पीटती है। जब्बार को जिस हवालात में भेजा जाता हे वहाँ पर उसे झोपडपट्टी में रहनेवाला नत्थू मिलता है, उसे भी चोरी के इल्जाम में पकडा गया हे। स्पष्ट है कि ये लोग रोजी-रोटी के लिए ही शराब बेचना, देह-विक्रय

करना, चोरी करना, तस्करी करना, भीख माँगना आदि अवैध व्यवसाय करते हैं। लेखक मार्क्सवादी विचारधारा के कारण इन लोगों का पक्षधर बनकर इनके इन अवैध व्यवसायों के प्रति सहानुभूति रखता है।

इन झुग्गी-झोपडियों में रहनेवाले लोग निम्न-स्तर के कुली, मजदूर, ड्राइवर, किस्तिये आदि प्रकार के होते हैं। ये लोग मजबूरी के बहाने अपने परिवार को छोडकर महानगर की झुग्गी-झोपडियों में आकर बसते है। परिवार से टूटे होने के कारण यहाँ आकर अवैध सम्बन्ध स्थापित करते हैं। जगदम्बाप्रसाद दीक्षितजी ने ऐसे अवैध सम्बन्धों की ओर भी महत्वपूर्ण संकेत दिये है। रोजी नामक वेश्या इसका अच्छा उदाहरण हो सकता है। मुरदाघर की रोजी अनेक पुरूषों से अवैध सम्बन्ध स्थापित कर चुकी है। रोजी अपने मर्द के बारे में सोचती है। उसका भी कभी मरद था। पहला चला गया छोडकर --- दूसरा आया। शादी नहीं की। थोडे दिन का साथ --- निकाल दिया उसने रोजी को। फिर तिसरा, फिर चौथा---- हर हफते के बाद हर रात---- नया मर्द।'[71] यहाँ रोजी के विवाहबाहय अवैध सम्बन्ध वर्णित किये हैं। रोजी हर मरद को पकड रखने का तरीका सोचती है परंतु किसी भी मर्द ने उसे अंत तक साथ नहीं दिया। मंगला दूधवाला से अवैध सम्बन्ध रखना चाहती है। सम्बन्ध रखने के लिए उसे जबरी भी करती है, परन्तु दूधवाला ऐसे सम्बन्ध रखने के विरूध्द जान पडता था। जगदम्बाप्रसाद दीक्षित ने दूधवाला भैय्या के रूप में कई शरीफ व्यक्तियों के दर्शन भी हमे कराये हैं, जो झुग्गि-झोपडियों की गंदगी में रहते हैं फिर भी गंदी करतूतों से अछूते रहते हैं। बाबूभाई और काली लडकी तारा के सम्बन्ध भी अवैध लगते हैं, कारण बाबूभाई तारा से चोरी का माल लेता है, उसके जिस्म के साथ खेल खेलता है परंतु उसे दो वखत का खाना नहीं देता या इस लडकी को जमानत भी नहीं देता। उल्टे बाबूभाई इस लडकी की सहायता करने से साफ इन्कार कर देता है, काली लडकी तारा बाबूभाई की स्वार्थी वृत्ति पर गालियाँ बकती हुई कहती है - 'साला, मादरचोद। और आँखों से शायद गिर जाये एकाद बूँद।'

इसी तरह के अवैध सम्बन्ध सुभद्रा और नारायण घाडगे के भी है। जेलखाने में कैद पडी सुभद्रा नारायण घाडगे के नाम पर पत्र लिखकर उसकी जमानत पर रिहा होना चाहती है। वह लैला को नारायण घाडगे के बारे में कहती है - 'क्या बताऊँ मैं। कोई नाता-रिश्ता हो तो बोलूँ। इधर तो कुछ भी नहीं। एक आदमी एक दिन आया। मैं पिछानी नई। बोला - सुभद्राबाई मेरे कूं पिछानती? मैं बोली नइ। कौन तू? हसने लगा। बोला फरासरोड के नाके के पास पुलिस का धाड गिरा ---- रात के टैम तुम भाग के आया होता। मैं तमकूँ फूटपायरी पर सोने का जगा दिया ---- इस व्यक्ति ने मेरे कूँ एक टैम बचाया। तभी से मेरा उसका पछान बढ गया।'[72]

नारायण घाडगे आगे सुभद्रा का दोस्त बन गया है, परन्तु न उसका कोई ठिकाना, न उसका कोई अता-पता। नारायण घाडगे कभी हमाली करता, कभी पाकिटमारी करता, कभी बढई का काम करता, वह उसे फिर कभी नहीं मिला। लेखक ने यहाँ आत्मकेन्द्रित अवैध सम्बन्ध दिखाये हैं जो पैसे के बलबुते पर स्थिर होते हैं। इस उपन्यास में लेखक ने अस्थिर अवैध सम्बन्धों का चित्रण किया है, जिसमें तनिक मात्र भी आत्मियता नहीं है।

जगदम्बाप्रसाद दीक्षितजी ने 'मुरदाघर' में स्थित तनावपूर्ण दाम्पत्य जीवन पर चित्रण किया है। भयावह दारिद्रय का अभिशाप ढोते-ढोते अपनी गृहस्थी को ये लोग निभाने में कैसे असमर्थ होते हैं इसपर लेखक ने पोपट मैना और जब्बार-हसीना के दाम्पत्य जीवन के माध्यम से प्रकाश डालने का काम किया है।

पोपट-मैना के दाम्पत्य जीवन में और गृहस्थी में एक तनाव भरा माहौल उभरा हुआ देखने को मिलता है। मैना का मर्द पोपट अतीव दरिद्रता के कारण मैना के जिस्म का सौदा करना चाहता है ऐसे मर्द पर शिकायत करती हुई मैना रोजी से कहती है - 'अइसा मरद कू तो केरासिन डाल के माचिस लगा देना माँगता साले कू मेरा --- छोकरे का बिलकूल फिकर नइ धन्धा करके लाओ, उसके थोबाड में भरो।'[73] पोपट शिकायत करते हुए मैना से कहता है कि तुझे आढाई रूपया खर्च करके शादी बनाकर ले आया हूँ। इस पर मैना क्रुध्द होकर कहती है - 'अच्छी जिंदगानी दे डाली तेरे कू। तू आढाई रूपिया का बात करता। सरम नइ आता तेरे कू।'[74] पोपट जैसे मर्द के साथ वह रहना नहीं चाहती। वह पोपट से इतनी नाराज है कि वह उसे छोडकर अन्यत्र जाना चाहती है। इस अवसर पर पोपट उसके पाव पकडकर कहता है - 'तू वापस नइ चलेंगी तो मैं दर्या में डूब कर मर जाऊँगा।'[75] यहाँ पोपट का मैना के प्रति प्रेम उभरकर आया है। वह बहुत समझाता है मैना को। वह मैना को वेश्या-व्यवसाय न करा देने का अभिवचन भी देता है परन्तु मैना का पोपट पर विश्वास नहीं है। पोपट-मैना में बार-बार झगडे होते हैं। रोजी के समझाने पर वह पोपट के साथ जाती है। पोपट और मैना में हर-बार झगडा होता है। हाथ पकडनेवाले पोपट को घुस्सा मारकर मैना कहती है - 'छोड मेरा हाथ। ---- तेरा मुरदा निकाले ---- तेरी मय्यत देखूँ मैं।'[76] पोपट अपनी पत्नी मैना का मार खाता है परन्तु उसका हाथ नहीं छोडता वह उसे वापस लेके जाना ही चाहता है। पोपट-मैना का झगडा देखने के लिए भीड इकठ्ठा होती है। मैना हाँपते-हाँपते पोपट को मारती है ---- रोती जाती है। ---- डुक्कर की अवलाद। ----- तेरा भला नहीं होगा। तू भौत तकलीप दिया मेरे कूं---- भौत रूलायाँ।'[77] वह पोपट को साक्षात् जानवर समझती है। हरामी कहकर पुकारती है। पोपट मैना के

गरमे मिजाज का परिचय भीड को करा देता है। झगडा करके आयी है, वापस घर आना नही चाहती है आदि बातें भीड को बताता है, किस्तैया भी मैना को समझाता है। मैना को वेश्या व्यवसाय के लिए पोपट ने ही बाध्य कर दिया है। मैना को उसकी लम्बी-चौडी डींग हाँकने की प्रवृत्ति पर विश्वास नहीं। उसकी डींगों की तरफ मैना दुर्लक्ष करती है। उसकी नफरत करके उसको नाउम्मीद करना चाहती है। मैना को खुश रखने के लिए पोपट आगे चलकर मेहनत करता है। परिश्रम के आधार पर प्राप्त पूँजी उसे कम लगती है और वह हाजी सेठ के व्यक्तियों के साथ तस्करी करना चाहता है और तस्करी का काम करते-करते एक दिन रेल की पटरी पर कुचलकर कट जाता है। उसके मरने के बाद मैना सिसक-सिसक कर रोती है। पोपट के सानिध्य में वह भूख की समस्या से बेहाल बनती है। अपने बेटे राजू का खयाल रखती है। परन्तु अंत में उसकी सारी जिंदगी ढह जाती है और उसका पति पोपट चल बसता है। पति-पत्नी के जीवन के तनाव और गृहस्थ जीवन का अभाव यहाँ जगदम्बाप्रसाद दीक्षित ने चित्रित किया है।

जब्बार और हसीना का गृहस्थ जीवन भी ऐसे ही तनावों से भरा हुआ लगता है। जब्बार चोरी के मामले में पुलिस द्वारा तडीपार किया हुआ झुग्गी-झोपडी का एक निवासी है। झोपडपट्टी में चोर, तस्कर, गुण्डें रहते हैं, जब्बार इन्हीं में से एक हैं। जब्बार की पत्नी हसीना उसे सदैव गालियाँ देती है। तडीपार किया हुआ जब्बार चोरी-छिपे हसीना से और अपने बेटे अमजद से मिलने आता है। वह चाहता है कि उसकी अनुपस्थिति में उसकी पत्नी हसीना वेश्या-व्यवसाय न करे। यहाँ जब्बार की प्रवृत्ति पोपट के खिलाफ लगती है। पोपट अपनी पत्नी मैना को वेश्या-व्यवसाय में धकेलना चाहता है, तो जब्बार अपनी पत्नी हसीना को इस व्यवसाय में प्रविष्ट होने से बचाना चाहता है। जब्बार गुण्डा होने पर भी अपनी पत्नी को रण्डी बनाने के विरोध में है। उसे अपने बेटे अमजद से बहुत प्रेम है। उसने हसीना से प्रेमविवाह किया है। वह चिंता व्यक्त करते हुए कहता है - "मैं उधर ---- औरत बच्चा इधर। मैं इधर आ सकता नइ। आया तो साला हवलदार पकड लेंगा। उधर रहूँ ---- तो मेरी औरत को ये साला लोग रण्डी बना डालेंगे।"[78] यहाँ जब्बार द्वारा यह स्पष्ट होता है कि समाज विवाहित औरतों को भी रंडी बनने को कैसे बाध्य करता है। हसीना का जब्बार से प्रेमविवाह हुआ था, उसकी माँ उधर ही रहती थी। हसीना को बेचकर पैसा कमाने का उसका इरादा था परंतु जब्बार ने उससे प्रेमविवाह करके हसीना को बुरे धन्धें में प्रविष्ट होने से बचाया था। इस मामले में उसी को झोपडपट्टीवासियों को मार भी खानी पडी थी। जब्बार अपनी पत्नी को देखने के लिए रात्री के अंधियारे में चोरी छिपे आता है तो रोजी इस मामले में उसकी मदत करती है। जब्बार हसीना से मिल जाता है तो दोनों पति-पत्नियों में झगडा शुरू हो जाता है। झोपडपट्टी के सब लोग इकट्ठा होते हैं। जब्बार को लगता है कि

हसीना ने उसे धोखा दिया है, हसीना को लगता है कि जब्बार ने उसे धोखा दिया है। जब्बार असहाय है। वह अपने पत्नी और बेटे कि लिए चोरियाँ करता था, हसीना उसके साथ रहना चाहती थी, उसे खाना माँगती थी। परंतु पैसे न होने के कारण जब्बार आपत्ती में पड जाता है। गुस्से में आकर हसीना की पीटाई करके वह कहता है - 'साली मादरचोद मेरे से बोलेंगी कि मैं कौन होता पूछनेवाला। तेरा जान ले डालूँगा, ---- खून करूँगा याद रखना।'[79] स्पष्ट है कि यहाँ जब्बार और हसीना में भी संघर्ष देखने को मिलता है। हसीना कहती है कि जब्बार ने विविध प्रकार के आश्वासन देकर उसे फँसाया है और तडीपार हो जाने के बाद उसकी दुर्गति कर दी है। इस स्थिति पर प्रकाश डालती हुई वह रोजी से कहती है - 'पण मेरेकू कायकू झूठा बोला कि मैं तेरे कू अइसा करके देऊँगा और वइसा करके देऊंगा --- भौत पइसा है मेरे कने तेरे कू खोली लेके देऊँगा ---- कोई बात का तकलीफ नहीं होने दूँगा।'[80] यहाँ हसीना को जब्बार द्वारा फँसाया गया है। वह जब्बार की विकृतियों से अजीज आयी है, वह जब्बार के साथ रहना नहीं चाहती है। वह रोजी से रो-रोकर अपनी भूख की समस्या प्रस्तुत करती है। स्पष्ट है कि जब्बार और हसीना इस पति-पत्नी के सम्बन्ध तणावपूर्ण है। रोजी द्वारा इन दानों में समझौता किया जाता है। परंतु अंत में पुलिस उसे पकडकर बेरहमी से उसकी पीटाई करती है। हसीना की और अमजद की जिंदगी में फिर अंधकार छा जाता है।

रोजी और चंदू के दाम्पत्य जीवन का सिर्फ संकेत दिया है कारण रोजी के साथ केवल चंदू की तस्वीर है। वह चंदू को तलाशती है लेकिन चंदू अभीतक उसे प्राप्त नहीं हो सका है।

झुग्गी-झोपडी में रहनेवाले इन लोगों में मानवता के दर्शन भी होते है। तडीपार किये गये जब्बार की सहायता करनेवाली रोजी और रोजी के प्रति जब्बार का प्रेमभरा बर्ताव में मानवतावाद के दर्शन होते हैं। अभावग्रस्त जब्बार का रोजी को चाय के लिए दो सिक्के देना, अपने बेटे अमजद के लिए उसका प्रेम होना, रोजी को चाय देने से इन्कार करनेवाले मलबारी के पास एक टूटा डिब्बा ढूँढकर ला देना, इस डिब्बे में रोजी को चाय देने की बिनती जब्बार द्वारा की जाना इन घटनाओं में गुण्डे जब्बार में मानवतावादी दृष्टिकोण उभर उठा है। अपने बेटे की याद आते ही जब्बार की आँखों से आसू गिरना, पत्नी के प्रति उसका सतर्क रहना इनमें भी मानवता के दर्शन होते हैं। मजबूरी से वेश्या-व्यवसाय में प्रविष्ट हुई नइ छोकरी को मैना द्वारा सहानुभूति दिखाकर अपने गाँव जाने की सलाह देना, प्रसववेदना से पीडित मरियम की सहायता अन्य वेश्याओं द्वारा करना, बिमार स्थिति में चमेली को अस्पताल में पहुँचाना आदि बातों में भी इन अभावग्रस्त लोगों की मानवता दर्शित होती है। पोपट की मौत पर उसकी पत्नी मैना की सहायता बशीरन द्वारा करना, अवैध सम्बन्धों से निर्मित मरियम के बच्चों की अन्य रंडियों द्वारा प्रशंसा करके उसे चूमना, रोजी द्वारा

जब्बार के लिए दर्गाह से कुछ खाना चुरा के ले आना, अपनी भूखी माँ मैना के लिए राजू द्वारा कई ब्रेड के टूकडे लाकर देना आदि बातों में इन लोगों का मानवतावादी दृष्टिकोन उभर उठा है।

दारिद्रय में पले अभावग्रस्त जिंदगी यापन करनेवाले इन लोगों में उज्जवल भविष्यत के सपने देखने की एक प्रवृत्ति भी 'मुरदाघर' में लक्षित होती है। पोपट इसका अच्छा उदाहरण हो सकता है। वह अपने उज्जवल भविष्यत के सपने को मैना के सामने प्रस्तुत करते हुए कहता है - 'मेरा जिंदगानी में खाली एकच बात है ---- तेरे कू चाली में खोली ले के देना --- तेरे कू अच्छा लूगडा ला के देना ---- एक दिन मेरा टैम जरूर आयेगा।'[81] मैना उसकी इन बातों पर दुर्लक्ष करती है।

पोपट मेहनत करके कुलीगिरी करके, हमाली करके कुछ प्राप्त होने की संभावना नही मानता। वह कम मेहनत में अधिक प्राप्त करने के लिए प्रयत्नबध्द है। वह हाजी मस्ताना का उदाहरण मैना को देते हुए कहता है - 'जो लोग कल कंगाल था--- आज लाखोपती बन गया। पुलिस का जो साब उसकू हवालात में बंद करता था ---- आज कोई उसकू सलाम करता है ---- उसका साथ मुर्गी खाता---- दारू पीता ---।'[82] पोपट का सपना है कि वह भी एक दिन हाजी सेठ बनेगा।

पोपट इस गंदी बस्ती से अपने को अलग करने का अरमान रचते हुए मैना से कहता है - 'अपुन इधर नइ रहेंगा। इधर से चला जाइंगा। तू मेरे कू एक चानस दे।'[83] वह अपनी पत्नी मैना से नफरत न करने की बिनती करता है। वह समय का इन्तजार करना चाहता है। वह कहता है - 'मेरा टैम जरूर आयेंगा। और मेरा टैम आयेंगा तो मैं तेरे कू अइसा रखूँगा कि जैसा हाजीसेठ का औरत भी क्या रहींगा।'[84] वह जब उज्जवल भविष्य के सपने देखता है तब मैना के चेहरे पर नफरत के सिवा और कुछ नही देखता। पोपट मैना को हर तरह से खुश रखने के लिए तरह-तरह के आश्वासन देता है। वह कहता है - 'हापूस आम का पेटी घूम-घूम के बेचेंगा। धुनी का पैसा धुनी को बाकी अपना। नइ तो स्टोव रिपेरिंग का काम करिंगा। दो-चार रूपिया रोज का कमाई किधर गया नइ। नइ तो जाईंगा लोकल गाडी में। कुछ तो भी बेचेंगा उधर ---- कण्डो, कलम, शेंगदाणा, चिक्की, चार-पाँच रूपयों तो किधर गया नइ सब ठीक हो जायेगा।'[85] परंतु पोपट के इस सपनों में मैना विश्वास रखना नही चाहती। पोपट अब मेहनत करके कमाना और अपने परिवार का भरन-पोषण करना चाहता है। उसने रात्री में एक सपना देखा है जिसे वह 'अपने बेटे राजू को सुनाते हुए कहता है - 'एक आदमी है, साधुसरीखा दिखता है। मेरे कू बोलता है --- पोपट। अब बदलेगा तेरा टैम। नया काम चालू कर दे। हाजी मलंग बाबा का नाम लेके --- भौत फायदा होगा।'[86] पोपट का बेटा राजू भी उज्जवल भविष्यत के सपने देखता है। वह भी अपना सपना पोपट से सुनाते हुए कहता है - 'वो ---- वो जो

गाडी जाती उधर विरार का बाजू में ----उसका ऊपर बैठा है हम लोग। ---- वो स्टेशन पर खाना मिलता पेट भर। पैसा भी मिलता। मेरे कू कि नइ बापू दररोज इधरकाच सपना आता।'[87] अतृप्त इच्छाओं से भरे ये सपने अभावग्रस्त लोग ही देख सकते हैं। पोपट और राजू इन अभावग्रस्त लोगों को अच्छे प्रतिनिधी पात्र लगते है। इन झुग्गी-झोपडियों के लोग उज्ज्वल भविष्यत के सपने देखते हैं। रोजी भी इसके लिए अपवाद नही रही। दो साल हुए रोजी को चंदू छोडकर चला गया है, कल्याण साईड की तरफ। उधर फैक्टरी में काम मिलेगा कुछ। वह रोजी से कह गया है - 'जइसाच पहिला पगार मिला ---- तेरे कू इधर से लेके जाइंगा।'[88] रोजी उसके इस आश्वासन पर उसका इन्तजार करते-करते हैरान हो गयी है और चंदू के सानिध्य की कल्पना करती हुई भविष्य के उज्जवल सपने देखती है।

झुग्गी-झोपडी में रहनेवाले लोग अशिक्षित, अंधःश्रध्द और अज्ञानी होने के नाते उनमें **गाली-गलौज** की प्रवृत्ति अधिक मात्रा में उभर उठती है। प्रस्तुत उपन्यास 'मुरदाघर' में लेखक ने वेश्याओं के बीच की गाली-गलौज की प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला है। बशीरन, नूरन, हीराबाई, मैनाबाई, शांती, पारबती आदि रंडियाँ पुलिसों को गालियाँ देती है। आपस में लडते-झगडते समय एक दूसरे को गालियाँ देती हैं, पति-पत्नी आपस में झगडते समय एक दूसरे को गालियाँ देते हैं। शराब बेचनेवाली किस्तैया मैना को गालियाँ देता है। बशीरन और मैना के बीच के झगडे में गालियों की बौछारे पडती हैं। पोपट-मैना के बीच के संघर्ष में मैना पोपट को गंदी-गंदी गालियाँ देती है। पुलिस वेश्याओं को गालियाँ देती हैं। जब्बार की पत्नी हसीना जब्बार को गालियाँ देती है। जूठन पर टूट पडनेवाले बच्चे आपस में गाली-गलौज करते हैं। मंगला दूधवाला भैया को गालियाँ देती है। मंगला मनचले को गालियाँ देकर कहती है - 'गाण्डो --- साला ---- हिजडा। ---- बन्दर की अवलाद।'[89] काली लडकी तारा बाबू भाई को तो सुभद्रा नारायण घाडगे को गालियाँ देती है। मरियम अपने अवैध सम्बन्धों से निर्मित बच्चे को गालियाँ देती है। ये रण्डियाँ इस बस्ती में स्थित हिजडों को गालियाँ देती है। स्पष्ट है कि झुग्गी-झोपडियों में बच्चों से लेकर बडे-बूढों तक सब लोग गालियों का इस्तेमाल करते हैं। जगदम्बाप्रसाद दीक्षित ने बडे साहस के साथ गालियों का चित्रण अपने उपन्यास में किया है।

झुग्गी-झोपडियों में रहनेवाले अशिक्षित लोग गंदगी में रहते हैं। तो इस गंदगी के परिणामस्वरूप उनमें कई **असाध्य बिमारियों** के दर्शन होते हैं। इस बस्ती में रहनेवाली अभावग्रस्त नारियाँ देह-विक्रय का व्यवसाय करती है, जिससे उन्हें गरमी, परमा जैसी असाध्य बिमारियाँ होती है। अतीव दारिद्रय के कारण ये इन बिमारियों पर इलाज नहीं कर सकते हैं। इस उपन्यास की मंगू वेश्याविश्व में फैली इन असाध्य बिमारी की ओर संकेत करती है। चमेली को हैजा हुआ है, परंतु

उसे भी अर्थाभाव के कारण इसपर इलाज करना कठीन बन जाता है।

इसके साथ-साथ इस उपन्यास में इस बस्ती पर होनेवाले पुलिस अत्याचार, पुलिस अत्याचार से आतंकित झोपडपट्टी का जनजीवन, वेश्या-नारियों के बीच आपसी संघर्ष, इन नारियों से उत्पन्न अवैध सन्तान, झोपडपट्टी की गंदगी, भगाकर इस बस्ती में लायी गयी नयी युवतियाँ, इन लोगों को होनेवाली कारावास की सजाएँ, इन लोगों की दैववादी प्रवृत्ति, इस बस्ती में बसी हुई रंडियों में वात्सल्य की भावना, पुलिसों से इन लोगों का संघर्ष, धोखाबाजी की शिकार यहाँ की औरतें, इस बस्ती के लोगों में आपस में होनेवाली मार-काट, इस बस्ती में स्थित हिजडों की दुनिया आदि पर लेखक ने अत्यंत सूक्ष्मता के साथ दृष्टिक्षेप करके झोपडपट्टी जनजीवन का चित्रण किया है।

निष्कर्ष :-

हिन्दी में झोपडपट्टी जनजीवन का स्वतंत्र रूप में चित्रण करनेवाले उपन्यास अत्यंतिक कम मिलते हैं परंतु संदर्भ रूप में इस जनजीवन का चित्रण हिन्दी उपन्यासों में जरूर मिलता है। जगदम्बाप्रसाद दीक्षितजी का झोपडपट्टी जनजीवन पर लिखा गया उपन्यास 'मुरदाघर' शायद झोपडपट्टी जनजीवन पर आधारित पहला स्वतंत्र उपन्यास होगा। उसमें लेखक ने बम्बई महानगरी के नारकीय जीवन को यथार्थता के साथ प्रस्तुत किया है। यह यथार्थ रेल-लाईन की ढलान पर बसी झोपडपट्टी की रंडियों के जीवन का है। इसमें झोपडपट्टी जनजीवन के भयावह रंग, असहय गंदगी, देह-विक्रय करनेवाली औरतें, भूख-मरी, जीवन की भयावह यंत्रणा, रोगग्रस्तता, मजबूरी, यातनाओं एवं दु:खों को बर्दाश्त की जानेवाली लाचारी आदि के दर्शन यहाँ होते हैं। देह-विक्रय करनेवाली इन औरतों को, कुली, मजदूर, मामूली पेशेवाले, किस्तीये, मनचले, आवारा छोकरे, टैक्सीवाले और हिजड़े घिरे रहते है। इस बस्ती में जब्बार जैसे तडीपार किए गये चोर हैं, पुलिस के शिकंजे में अटके हुए इन्सान भी हैं। पूरी बस्ती मानो एक मुरदाघर ही है। लेखक ने झोपडपट्टी में स्थित सामाजिक रूग्णता का लेखा-जोखा प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से पेश किया है। इन लोगों में निश्चित ही मानवता की बुझती चिनगारी का निवास है। मैना की यातना, जब्बार का प्रयत्न, रोजी के अन्दर की जिंदा मानवता, मरियम की ममता आदि इसके अच्छे उदाहरण हो सकते हैं, जिनमें जीवित मानवीयता के दर्शन होते हैं। इस उपन्यास में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग होने के नाते झोपडपट्टी जनजीवन जिंदा बन बैठा है। मराठी से प्रभावित बम्बईया हिन्दी में पात्र बोलते हैं। इस उपन्यास की भाषा, परिवेश की संस्कृति और अशिष्टता पर प्रकाश डालती है। स्पष्ट है कि मरे हुए जीवित इन्सानों की समस्याओं को व्यक्त करनेवाला यह हिन्दी का प्रथम उपन्यास है। इसमें झोपडपट्टी जनजीवन का एक दस्तावेज प्रस्तुत किया है।

'बसंती' - 1980 : भीष्म साहनी :

'बसंती' के लेखक ने अस्थायी जीवन की ओर प्रकाश डाला है। इस झोपडपट्टी में देश के विभिन्न प्रांतों के लोग बसे हुए हैं और ये झोपडपट्टी झोपडपट्टी का सुधरा हुआ रूप लगती है। भीष्म साहनी ने इस उपन्यास में झोपडपट्टी जनवासियों की अस्थायी जिंदगी, पुलिस और अफसरों का उनपर लाया हुआ आतंक, झोपडियाँ न तोड़ने के लिए इन लोगों की अफसरों के सामने प्रस्तुत मजबूरी, इस बस्ती में स्थित बापद्वारा बेटी का सौदा, इन बस्तियों में बसे हुए लोगों में स्थित आपसी द्वेष, इन बस्ती के मजबूर युवतियों की आत्महत्या की कोशिश, इन लोगों में स्थित गाली-गलौज की प्रवृत्ति, इन लोगों द्वारा भविष्यत के प्रति सोचने की प्रवृत्ति, नशापान की वृत्ति, सरकार द्वारा इन झोपडियों में किये गये विकासकार्य, ठगाने की प्रवृत्ति, इनके मनोरंजन के तौर-तरीके, झुग्गी-झोपडियों का परिवेश, इन बस्तियों में स्थित दारिद्रय, दरिद्री बाप द्वारा अपनी बेटी का अनमेल विवाह सम्पन्न करने की प्रवृत्ति, इन लोगों में स्थित अंधःविश्वास, इन लोगों की मानवतावादी दृष्टि, इन लोगों में स्थित बेकारी, आपसी संघर्ष, उदरपूर्ति के लिए किये जानेवाले छोटे-छोटे उद्योगधंधे आदि का यथासांग चित्रण भीष्म साहनी ने प्रस्तुत उपन्यास में किया है।

इस उपन्यास के प्रारंभ में भीष्म साहनी ने इस बस्ती का परिवेश चित्रांकित किया है - 'दिल्ली की एक सडक के किनारे एक छोटासा राजस्थान बसा हुआ था। आजादी के बाद दिल्ली शहर फैलने लगा था। नयी-नयी बस्तियों की उसाद होने लगी थी और उन बस्तियों को बनाने के लिए जगह-जगह से मजदूर खिंचे आने लगे थे। दिल्ली से दूर जहाँ कहीं सूखा पडता या बाढ आती वहीं से लोग उठ-उठकर दिल्ली की ओर भागने लगते। कहीं परिवार के परिवार आने लगे, कहीं अकेले मर्द, कई छोटे उम्र के लौंडे-लडके भी। कहीं राजस्थान से तो कहीं हरियाणा और पंजाब के गाँवों से और कहीं दूर दक्षिण से भी पर मजदूरी के काम के लिए सबसे ज्यादा लोग राजस्थान से ही आये। रोजगार की तलाश में राज-मजदूर ही नहीं, धोबी, नाई, चाय-पानवाले और भी तरह-तरह के धन्धे करनेवाले लोग वहाँ पहुँचने लगे।'[90] और झुग्गी-बस्तियाँ बनने लगी।

अपना गाँव छोडने का दर्द इन लोगों के मन में स्थित है। इन्होंने दिल्ली में रहने के बावजूद भी अपने संस्कार और रहन-सहन परंपरागत रूप में रक्षित किये हैं। लेखक लिखते हैं - 'दिल्ली के बशिन्दे बन जाने के बावजूद भी इस बस्ती में जाओ तो लगता है जैसे राजस्थान के ही किसी कस्बे में पहुँच गये हो। --- रंग-बिरंगे घागरे, पावों में छलकती पाजेब, चारों ओर राजस्थानी रंग छिटते रहते हैं। झोपडों की दीवारों पर राजस्थानी चलन के अनुसार कहीं मोर तो

कहीं हाथी तो कहीं सरपट दौडते चेतक, घोडे के चित्र बने रहते है।'[91] लगता है इस झुग्गी बस्ती में बसनेवाले ये लोग अपने संस्कार और रीति-रिवाजों को अपने व्यक्तित्व का एक अभिन्न अंग मानते हैं।

सरकारी कानून के आधार पर अनुचित जगह पर बसायी गयी बस्तियाँ पुलिसों द्वारा और नगर-निगम द्वारा तोडी जाती है। यहाँ राजधानी दिल्ली में अवैध रूप से बसी इस बस्ती को तोडने के लिए पुलिस दल का हमला होता है, मकान तोडे जाते है, थोडी-ही देर में सब कुछ उजड जाता है, पूरी की पूरी आबादी उस बस्ती से उठाकर कई मिल दूर पहुँचाई दी जाती है। उपन्यास के प्रारंभ में ही इस तोडफोड का वर्णन करके और अंत में भी उसी तोड-फोड के दृश्य को दिखाकर इन लोगों की अस्थिर और विस्थापित जिंदगी की ओर लेखक ने इशारा किया है।

उपन्यास के अंत में बसंती द्वारा इस तोड-फोड पर प्रकाश डालते हुए कहा है - 'और बसंती पप्पू को छाती से लगाये पिछली सडक की ओर घूम गयी। पिछली सडक की ओर इसलिए कि आगे जाने के लिए कोई सडक नहीं।'[92] वास्तव में काल का कोई चक्र नहीं चलता इन्सानों की बस्ती तोडने के लिए दूसरे इन्सान ही कालचक्र चलाते हैं। यहाँ बसंती ने मनुष्य के दानवी प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला है। इन लोगों में बस्ती उजडने का गहरा दर्द रहता है। टूटनेवाली बस्ती को बचाने के लिए इस बस्ती के प्रतिनिधी पात्र सरकारी अधिकारी के पास जाकर कहते हैं - 'मालिक, हम राजमिस्त्री, हम ही घर बनावें और हमारे ही रहने के लिए ठौर नहीं।'[93] ये लोग अपने भाग्य पर रोते हैं। बस्ती तोडी जाती है। सब नाराज होते हैं। इसपर प्रकाश डालते हुए लेखक लिखते हैं - 'सियार और साँप और उल्लू और अन्य जीव-जन्तू तो केवल इस ताक में रहते हैं कि कब कोई बस्ती खदेड दी जाय और कहीं पर जाकर अपना अधिपत्य जमा ले।'[94] झुग्गी-बस्ती में स्थित छोटे-छोटे मकान गिराये जाते हैं, तब हीरा कहता है - 'हकीम अच्छा मिल जाय यह भी किस्मत की बात है।'

घर

जब चौधरी गोबिन्दी के चाय-पान के लिए पहुँचा तब उसे पता लगता है कि अपनी बस्ती तोड दी जानेवाली है। बस्ती को बचाने के लिए ये लोग हर तरह के प्रयत्न करते हैं। अफसर से बातें करके वापस आने पर हीरा कहता है - 'बडे धीरज से बात सुनता रहा, बडे अफसर तो भले लोग ही होते हैं, हरामी तो नीचेवाले छोटे अफसर होते हैं।' यहाँ इन लोगों को अस्थायी बनाने के लिए छोटे अफसरों का ही योगदान अधिक रहता है, इसका पता चलता है। बस्ती तोडने के बारे में जब चर्चा शुरू होती है तब गोबिन्दी की प्रतिक्रिया देखिए - 'जिस जमीन पर हमारी कोठरियाँ खडी है वे हमारे नाम कर दो , और हमसे जमीन के पैसे ले लो। कोठरियाँ तो हमने अपने पैसों से बनायी है, इन्हें कोई क्यों तोडे? हमारा नुकसान भी करें और हमें बेघर भी

करें।'[95] स्पष्ट है कि यहाँ बेघर बनने का दर्द गोबिन्दी के मन में बहुत है। बस्ती तोडने की आवाजें आती हैं इसपर प्रकाश डालते हुए मनवा कहता है - 'पुलिस आयी है, सडक पर लारियाँ-ही-लारियाँ है।'[96] गंगू भी यही कहती है - 'घर तोड़े रहे हैं, नीचे पुलिस की लारियाँ-ही-लारियाँ हैं। मैं चौका-बर्तन करने बाबू के घर गयी थी। वही पता चला तो भाग आयी। उठा लो जों उठा सकती हो नहीं तो वे एक-एक चीज तोड डालेंगे।'[97] इसतरह बस्ती में चारों तरफ असंतोष फैला हुआ है, भागदौड शुरू हुई है, सामान बिखर रहा है, कीचड में बरसात के दिन सामान उठाना कठीन हुआ है, सभी ओर शोर-गुल मचा है, कोई चढ पाता है, कोई पिछे छूट जाता है, कोई अपना सामान लारियों में चढाता है, बिसेसर की अंधी माँ आक्रोश कर रही है, बस्ती से लोग निकलते जा रहे हैं, लारियों के पास की भीड हटाने के लिए पुलिस लाठियाँ चला रही है, बस्ती के लोग तितर-बितर होने लगे हैं, सडक के पार रमेशनगर के बाबू लोग सब तमाशा देख रहे हैं, यहाँ वर्ग-संघर्ष नजर आ रहा है, सफेदपोश व्यक्ति और झुग्गी-बस्तियों में बसे हुए व्यक्ति इनमें एक प्रकार की टकराहट देखने को मिलती है। आहुजा इस टकराहट पर प्रकाश डालते हुए कहता है - 'कानून, कानून है, क्या किया जाये। पक्की कोठरियाँ बनाना ही नहीं, सरकारी जमीन पर कब्जा करना ही गैर-कानूनी है। बैठे-बैठे ये मुफत में अपनी कोठरियाँ खडी कर दी।'[98] टूटी हुई बस्ती शहर से पाँच मील दूरी पर सपाट मैदान में बसायी जाती है। वहाँ नल के पानी पर लडाई-झगडा शुरू होता है। पेड की छाव में लोग सहारा ले रहे हैं, वहाँ आकर इन लोगों ने कच्ची कोठरियाँ खडी कर दी इन कोठरियों के सामने अधनंगे बच्चे खेलते थे, औरतें चूल्हे जलाती थी। किसीने टाट तो किसीने लकडी की खपच्चिया जोड-जोड कर पर्दे कर दिये। स्पष्ट है कि महानगरीय जनजीवन में झुग्गी-झोपडियाँ तोड़ने के बाद इन लोगों की स्थिति कैसी दयनीय होती है इसपर भीष्म साहनी ने मार्क्सवादी दृष्टिकोन से स्पष्ट किया है। लेखक ऐसे लोगों की बस्तियाँ तोडने के पक्ष में नहीं है। वे चाहते हैं कि सभी लोगों को आवास स्थान की सुविधा सरकार द्वारा प्राप्त करा दी जाय।

झुग्गी-झोपडी में रहनेवाले लोगों पर पुलिसों का आतंक सदा रहता है। दिल्ली की झुग्गी-झोपडी पर भी महानगर के अफसरों का और पुलिसों का आतंक देखने को मिलता है। छोटा अफसर इन लोगों को कहता है - 'तुम्हें निकलना होगा, बस्ती खडी नहीं रह सकती। सरकार ने जो जो फैसला करना था कर दिया है।'[99] बसंती द्वारा जब पुलिसों को पूछा जाता है कि तुम विष्णू की कोठरी क्यों तोडते हो इसपर पुलिस का एक व्यक्ति उसे धमकाते हुए कहता है - 'भाग यहाँ से हरामजादी, नहीं तो बताता हूँ तुम्हें, क्यों तोड रहे है?'[100] पुलिस एक औरत को

धक्का देकर कहता है - 'चूप करेगी या हथकडी लगा दूँ? निकल यहाँ से।'[101] झोपडी न तोडने पर औरत द्वारा पुलिस के व्यक्ति को बिनती की जाती है तब पुलिस का व्यक्ति खौल उठता है और स्त्री को धमकाता है।

इस उपन्यास के अंत में फिर एक बार पुलिस का आतंक देखने को मिलता है। अंत में पूरी बस्ती तोड़ी जाती है। पुलिस इन लोगों को सडक पर भी धन्धा करने नहीं देते। एक पुलिसवाले ने बुटपालिस करनेवाले एक लडके का पालिश का डिब्बा उठा लाया उसकी टोपी एक दूकान की छत पर फेंक दी और उसे धमकाते हुए पुलिस कहने लगी - 'भाग जा, भाग जा नहीं तो तुझे भी उठाकर छत पर फेंक दूँगा।'[102] स्पष्ट है कि इन लोगों के जीवन पर पुलिस का डर हमेशा छाया रहता है।

इन लोगों में आपसी द्वेष और संघर्ष की प्रवृत्तियाँ भी देखने को मिलती है। जब हिम्मतू अपनी खाट लारी में चढाता है तब पुलिस उसे रोकती है। बाद में वह खाट ऊपर चढता है तो उनके बस्ती के लोग ही उसे नीचे फेंक देते हैं। इसपर हिम्मतू कहता है - 'हमें नही ले जाने देते तो तुम कैसे ले जाओगे।'[103] यहाँ इन लोगों के बीच हुए आपसी द्वेष स्पष्ट होते है।

चौधरी और राजपूत बेटे के बीच धन्धें की जगह को लेकर आपसी द्वेष देखने को मिलता है। ये दोनों भी नाई का काम करते हैं। चौधरी कहता है - 'मैं तेरे बाप बराबर हूँ, बेशरम, बेहया, अपने बाप को भी उठाकर पटकेगा, हरामी की अवलाद ----।'[104] दीनू और बसंती में आपसी संघर्ष के दर्शन होते हैं। बसंती और दीनू के बीच आपसी संघर्ष बढ जाता है। वह दीनू से कहती है - 'तू भी हरामी, वह भी हरामी। खबरदार जो मेरे बच्चे को हाथ लगाया, बडा आया देखनेवाला, मेरे पेट में अपना बच्चा देकर मुझे बेचने चला था, हरामी, बेशरम, बदजात।'[105] बुलाकी द्वारा भी दीनू पर मुकदमा दायर किया जाता है। बसंती और रूक्मी में भी आपसी द्वेष के दर्शन होते हैं।

'बसंती' में लेखक ने झुग्गी बस्तियों के अर्थाभाव को वाणी देने का काम किया है। दिल्ली की झुग्गी-झोपडी में रहकर उदरपूर्ति के लिए नाई का काम करनेवाला चौधरी लँगडे दर्जी बुलाकी के पास जाकर अपनी बेटी बसंती के विवाह की बात करता है और बारह-सौ रूपयों की माँग करते हुए कहता है - 'बारह-सौ होंगे कहेगा तो आज ही उसके हाथ पीले कर दूँगा। चार-सौ पेशगी अभी-अभी दे दे, पूरे एक हजार हो जायेंगे। दो सौ लुगाई घर आ जाने पर दे देना।'[106]

यहाँ चौधरी अभावग्रस्तता के कारण अपनी बेटी का विवाह लँगडे और बूढे बुलाकी के साथ सम्पन्न कर देना चाहता है। श्यामा बीबी को अपना दर्द बताती हुयी बसंती कहती है -

'हमारा बापू बेटियाँ बेचता है ---- मेरी बडी बहिन का ब्याह भी गाँव में किसी बूढे के साथ कर दिया, उससे आठ सौ रूपये लिये। वह गाँव में बैठी घास छिलती है।'[107] बसंती लँगडे दर्जी बुलाकी के साथ ब्याह करने से इन्कार करती है और अपनी आत्महत्या करने का विचार प्रस्तुत करती हुयी कहती है - 'मैं फिर से चुहे मारनेवाली गोलियाँ खा लूँगी।'[108] अपनी उदरपूर्ति के लिए बसन्ती श्यामा बीबी के यहाँ और अन्य बाबू लोगों के घर चौका-बर्तन करने का काम करती है। आगे चलकर बसंती दीनू के साथ शादी करती है। दीनू को अपनी माँग भरने को कहती है और पति-पत्नी के रूप में दोनों रहते हैं। ऐसे खिलवाडजन्य विवाह की निर्मिती के पिछे अर्थाभाव ही काम करता है।

ये अभावग्रस्त लोग अंधःकारपूर्ण भविष्यत के प्रति चिंतन भी करते हैं। बसंती इसका अच्छा उदाहरण है दीनू के चले जाने पर बसंती सोचती है - 'आगे क्या होगा, कैसा होगा इस बारे में अधिक सोचने की आदत बसंती को अब तक नहीं थी पर बढते अंधेरे में निपट अकेली एक पतली सी डोर के सहारे अपने अज्ञात भविष्यत से जुडी रहने का भी उसे अनुभव नहीं हुआ था।'[109] दीनू और बसंती की मुलाकात बहुत पुरानी नहीं थी। एक शादी में बसंती को, बर्तन माँजते हुए दीनू ने देखा था। दीनू भी इसी काम के वास्ते यहाँ आया था। इसी मुलाकात में बसंती दीनू को चाहने लगी। तत्पश्चात दीनू को छात्रावास में काम मिला। वहाँ उसे रहने के लिए कमरा भी मिला। इससे खुश होकर बसंतीने दीनू से शादी भी की और उसके साथ रहने लगी। अंत में दोनों में संघर्ष हुआ और दीनू बसंती को छोडकर गाँव चला जाता है और बसंती अपने अंधःकारमय भविष्यत के बारे में चिंतन करने लगती है।

इसी प्रकार कई बसंतियाँ झुग्गी-झोपडियों में रहती है, जो अपने भविष्यत की तरफ चिन्ता-भरी दृष्टि से देखती है।

ये लोग अज्ञानी और अशिक्षित होते है जो हमेशा गाली-गलौज का प्रयोग करते है। बसंती का दीनू के साथ भाग जाने पर उसकी माँ और बापू उन्हें रास्ते में मिलते है। उन दोनों की नजर चुकाकर वह भागती है। इतने में उसे बडी बहन और उसका पति मिलता है, तब बसंती इन दोनों के बीच स्थापित गाली-गलौज पर प्रकाश डालती है। वह कहती है - 'बहन भी गालियाँ बकती है और वह भी गली में खडा गालियाँ बकता है।'[110] चौधरी और रजपूत बेटे के बीच धन्धें की जगह के कारण गाली-गलौज का प्रसंग आया है। धोखा देकर भाग जानेवाले दीनू बसंती गालियाँ देती है। स्पष्ट है कि यहाँ गाली-गलौज पर लेखक ने अधिक गहराई से चित्रण नहीं किया है।

नशापान के आदती लोगों के दर्शन भी यहाँ होते हैं। छात्रावास के एक कमरे में बैठकर अकेले में वसंती द्वारा बीडियाँ पीना, भोली के पति द्वारा शराबपान करके भोली की खूब पीटाई करना, उसके पतिद्वारा भोली को शराब पीने की जबरदस्ती करना, शराब की नशा में भोली को घर से बाहर निकालना, भोली के पति और उनके दोस्तों में शराब-पान करके आपस में झगडना आदि बातें इस बस्ती के लोगों के नशापान की प्रवृत्ति पर प्रकाश डालती हैं।

आपसी संघर्ष एवं झगडे मिटाने के लिए इन लोगों में पंचायत होती है। इन लोगों में जो छोटे-बडे झगडे होते हैं उसे मिटाने के लिए इन लोगों की एक पंचायत भी रहती है। रामदयाल की भागी हुई पत्नी के वापस आने पर पंचायत बुलायी जाती है। पंचायतवाले उसे सुझाव देते हैं कि - 'तू उसे पीटना छोड दे वह कही नहीं जायेगी।'[111] यहाँ पंचायत की आवश्यकता बताते हुए मोतीराम बोधराज से कहता है - 'यह तो हम भी जानते है कि पंचायत कुछ नहीं कर सकती, पर मिल बैठते तो है, अपने-अपने सुख-दुःख की बातें तो करते हैं।'[112] यहाँ पति-पत्नी के बीच के छोटे-मोटे झगडे छुडाने का काम इन लोगों में स्थित पंचायत करती है।

इन झुग्गियों में जातीय भेदाभेद के दर्शन भी होते हैं। ये जातीय भेदाभेद महानगरों में आने के पश्चात धीरे-धीरे कम भी होते हैं। अपने पुराने कर्म छुटने के कारण ये लोग दुःखी हैं। उन्हें हर तरह के नीचले व्यवसाय करने पडते हैं। 'बरसों से इस बस्ती के छोर पर रहने के बावजूद चौधरी को अभी भी बाहर का, छोटी जात का आदमी माना जाता है।'[113] इन झुग्गी-झोपडियों में बसे हुए लोगों ने अपनी जातीयता की दीवारों को कैसे लाँघा है इसका भी चित्रण लेखक ने किया है। मंगरू इसका अच्छा उदाहरण है। मंगरू कहता है - 'मैं राजपूत का बेटा हूँ चाचा, फिर भी नाई का काम करता हूं ---- दिल्ली में जात नहीं चलती ---।'[114] यहाँ जातीय भेदाभेद की तीव्रता झुग्गी-झोपडियों में कैसे कम होने लगती है इस पर भी संकेत किया है।

निष्कर्ष :-

इस तरह भीष्म साहनी ने इस उपन्यास में झोपडपट्टी जनजीवन के विविध पहलुओं को नजरअंदाज करते हुए यह विषद किया है कि आज की झोपडपट्टियाँ महानगर की पूँजीपतियों के काली-करतूतों का योगदान है और इसमें बसे हुए लोग विविध अभावों में रहकर भी विस्थापितों की जिंदगी यापन करते हैं। कानून के नाम पर इन लोगों का शोषण पुलिस करती है। इन बस्तियों में मानवी सम्बन्धों के भी विविध आयाम देखने को मिलते हैं। लेखक ने झोपडपट्टी सुधार कार्य के बारे में भी यहाँ कई संकेत दिये हैं। सरकार द्वारा झोपडपट्टी निर्मूलन करके इन लोगों को पक्के मकान मिल जाए ऐसी ही भीष्म साहनी की धारणा है।

निष्कर्ष :-

हिन्दी में सन 1960 के बाद अस्पर्शित भूमि को तलाशने का प्रयत्न शुरू हुआ। झोपडपट्टी जैसी महानगरीय घिनौनी जिंदगी शैलेश मटियानी, जगदम्बाप्रसाद दीक्षित और भीष्म सहानी ने देखी। नयी संचेतना से प्रबुध्द इन लेखकों ने 'कबूतरखाना,' 'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई,' 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक,' 'मुरदाघर,' 'बसंती' आदि उपन्यास लिखकर घिनौनी नरकपुरी में प्रविष्ट होकर झुग्गी-बस्ती के जनजीवन को पाठकों के सामने रखने का स्तुत्य प्रयत्न किया। इनमें से शैलेश मटियानी ऐसे लेखक है जिन्होंने अनुभूति और संवेदना के साथ इस जनजीवन का चित्रण किया है। जगदम्बाप्रसाद दीक्षित का 'मुरदाघर' और भीष्म साहनी के 'बसंती' में भी अनुभव की अपेक्षा संवेदना को अधिक प्रश्रय मिला है। इन लेखकों ने मार्क्सवादी विचार धारा से अभिभूत होकर झुग्गी-बस्ती के जनजीवन का चित्रण किया है। फिर भी इन उपन्यासों में अन्य विचार धाराओं के दर्शन भी हमें होते हैं। यथार्थवाद, प्रकृतिवाद, अतियथार्थवाद, आदि के भी यहाँ कम-अधिक मात्रा में दर्शन होते हैं।

ये उपन्यासकार झुग्गी-झोपडी में बसनेवाले जनजीवन के सुख-दुःख से तदाकार हुए लक्षित होते हैं। ये इन लोगों के पक्षधर बनकर इनकी हिमायत करना चाहता है। इसके भी दर्शन होते है।

इन उपन्यासों में अतीव दारिद्रय, असाध्य बिमारियाँ, स्त्री-पुरूषों के खुले सम्बन्ध, बच्चों के व्यक्ति-विकास पर आनेवाली रूकावट, वहाँ के बुरे व्यवसाय, वेश्या-व्यवसाय, तस्करी, हातभट्टी, चोर-बजारी, गुनहगारी आदि के कारण झोपडपट्टी में अप्रतिष्ठा यहाँ उभर उठी है इसके भी दर्शन यहाँ होते हैं।

इन झुग्गी-बस्तियों में अनैतिक संबंध, अवैध संबंध, अवैध मातृत्व आदि के दर्शन भी आलोच्य उपन्यासों में होते हैं। कानून तोडना, रिश्वतें देना, गुण्डई करना आदि प्रवृत्तियाँ भी इस जीवन में उभरी हुई देखने को मिलती है। झोपडपट्टियों के दादाओं को अपने हाथ लेकर नेता लोग अपना उल्लू सीधा करने लगे हैं। इन आलोच्य पाँच उपन्यासों में दिल्ली और बम्बई के नारकीय झोपडपट्टी जनजीवन को उपन्यास का केन्द्र बनाया है। रेललाईन की ढलान पर बसी हुयी इन बस्तियों मे असहय गंदगी, देह-विक्रय करनेवाली औरतें, जीवन की भयावह यंत्रणा, असाध्य रोग-ग्रस्तता, लाचारी, मजबूरी आदि के दर्शन होते हैं। इस बस्ती में निम्न वर्ग के लोग बसते हैं जो महानगरीय जीवन में अशांतता स्थापित करके गुनहगारी दुनिया का निर्माण करते हैं। 'बोरीवली से

बोरीबन्दर तक' का युसुफ दादा, 'मुरदाघर' का पोपट और जब्बार ऐसे ही गुनहगार व्यक्ति हैं। ऐसे लोगों को पुलिस तडीपार करती है। पुलिसों के शिकंजे में अटककर ये लोग बहुत पीटे जाते हैं। झोपडपट्टी की घिनौनी दुनिया से सभी पहलुओं के दर्शन पाठकों के सामने प्रस्तुत करके इन लेखकों ने अत्यंतिक साहसभरा काम किया है ऐसा लगता है।

संदर्भ सूची :-

1. शैलेश मटियानी - 'कबूतरखाना', आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्र.सं.1960, पृ. 3
2. वही, पृ. 67.
3. वही, पृ. 68.
4. वही, पृ. 93.
5. वही, पृ. 5.
6. वही, पृ. 5.
7. वही, पृ. 78.
8. वही, पृ. 83
9. वही, पृ. 107
10. वही, पृ. 21
11. वही, पृ. 45
12. वही, पृ. 48
13. वही, पृ. 52
14. शैलेश मटियानी - 'बोरीवली से बोरीबंदर तक',
    आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्र. सं. 1969, पृ. 1.
15. वही, पृ. 20
16. वही, पृ. 25
17. वही, पृ. 31
18. वही, पृ. 31
19. वही, पृ. 5
20. वही, पृ. 49
21. वही, पृ. 53
22. वही, पृ. 54
23. वही, पृ. 93
24. शैलेश मटियानी - 'बोरीवली से बोरीबंदर तक',
    आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्र.सं. 1969, पृ. 40
25. वही, पृ. 67
26. वही, पृ. 67-68
27. वही, पृ. 35

28. वही, पृ. 51
29. वही, पृ. 41
30. वही, पृ. 53
31. वही, पृ. 61
32. वही, पृ. 68
33. वही, पृ. 68
34. वही, पृ. 103 - 104
35. वही, पृ. 106
36. वही, पृ. 188 - 189
37. वही, पृ. 194
38. जगदम्बाप्रसाद दीक्षित - 'मुरदाघर' , राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, तृ. सं. 1981, पृ.7
39. डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर - 'उपन्यास स्थिति और गति', पुर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. - 1977, पृ. 404
40. जगदम्बाप्रसाद दीक्षित - 'मुरदाघर' , राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, तृ.सं. 1981, पृ. 8
41. वही, पृ. 8
42. वही, पृ. 8
43. वही, पृ. 17
44. डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर - 'हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन' (1920 - 1947), कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, प्र. सं. 1969, पृ. 184
45. जगदम्बाप्रसाद दीक्षित - 'मुरदाघर' , राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, तृ.सं. 1981, पृ. 8
46. वही, पृ. 9
47. वही, पृ. 9
48. वही, पृ. 9
49. वही, पृ. 11
50. वही, पृ. 12
51. वही, पृ. 37
52. वही, पृ. 37
53. वही, पृ. 38
54. वही, पृ. 73

55. वही, पृ. 107
56. वही, पृ. 125
57. वही, पृ. 31
58. वही, पृ. 33
59. वही, पृ. 30
60. वही, पृ. 129
61. वही, पृ. 203
62. वही, पृ. 20
63. वही, पृ. 23
64. वही, पृ. 54
65. वही, पृ. 54
66. जगदम्बाप्रसाद दीक्षित - ' मुरदाघर' , राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, तृ.सं. 1981, पृ. 63 - 64
67. वही, पृ. 91
68. वही, पृ. 122
69. वही, पृ. 128 - 129
70. वही, पृ. 159
71. वही, पृ. 15
72. वही, पृ. 94
73. वही, पृ. 15
74. वही, पृ. 15
75. वही, पृ. 17
76. वही, पृ. 19
77. वही, पृ. 19
78. वही, पृ. 63
79. वही, पृ. 41
80. वही, पृ. 166
81. वही, पृ. 21
82. वही, पृ. 23

83. वही, पृ. 88
84. वही, पृ. 88
85. वही, पृ. 121
86. वही, पृ. 167
87. वही, पृ. 167
88. वही, पृ. 67
89. वही, पृ. 38
90. भीष्म साहनी - 'बसंती', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वि. सं. 1982, पृ. 13
91. वही, पृ. 14
92. वही, पृ. 168
93. वही, पृ. 10
94. वही, पृ. 39
95. वही, पृ. 12
96. वही, पृ. 20
97. वही, पृ. 21
98. वही, पृ. 28
99. वही, पृ. 10 - 11
100. वही, पृ. 24
101. वही, पृ. 25
102. वही, पृ. 164
103. वही, पृ. 27
104. वही, पृ. 44
105. वही, पृ. 140
106. वही, पृ. 16
107. वही, पृ. 37
108. वही, पृ. 38
109. वही, पृ. 55 - 56
110. वही, पृ. 51 - 52
111. वही, पृ. 67
112. वही, पृ. 66
113. वही, पृ. 10
114. वही, पृ. 44